स्त्री और पुरुष

—लीओ टाल्स्टायके Relation to the Sexes का अनुवाद—

अनुवादक

श्री ज्ञानचंद जैन

सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तंड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

छठी बार, १९४८
मूल्य
बारह आना

मुद्रक
अमरचंद्र
राजहंस प्रेस,
दिल्ली १२'४८

स्त्री और पुरुष

: १ :

'क्रूजर सोनाटा'[1] का परिशिष्ट

मेरे पास अपरिचित व्यक्तियोंके ऐसे अनेक पत्र आये हैं और आ रहे हैं, जिनमें मुझसे कहा गया है कि अपनी 'क्रूजर सोनाटा' शीर्षक कहानीमें मैंने जिस विषयको उठाया है, उस संबंधमें मैं अपने विचार सरल और सुबोध भाषामें स्पष्ट कर दूँ। मैं यहां यही यत्न करूंगा, अर्थात् मैं यथासंभव संक्षेपमें, उस कहानीके द्वारा मैं जो कुछ कहना चाहता था, उसका सार देनेका प्रयत्न करूंगा, तथा मेरे मतानुसार उस कहानीसे जो निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं, उन्हें बतानेकी चेष्टा करूंगा।

पहली बात तो मैं यह कहना चाहता था कि हमारे समाजके सभी वर्गोंमें यह दृढ़ धारणा बंध गई है, और झूठे विज्ञानके द्वारा इसका समर्थन भी किया जाता है, कि स्वास्थ्य रक्षाके लिए मैथुन नितांत आवश्यक है, तथा, चूंकि सभी व्यक्तियोंके लिए विवाह संभव नहीं है, इसलिए विवाह-बंधनके बिना भी, पैसे देकर व्यभिचार करना सर्वथा स्वाभाविक है और उसे प्रोत्साहन देना चाहिए।

यह धारणा समाजमें इतनी फैल गई है कि कितने ही माता-पिता डाक्टरोंकी सलाहसे अपनी संतानोंको पापाचरणके लिए उत्तेजित करते हैं; सरकारका धर्म अपनी प्रजा का नैतिक जीवन

१—स्त्री-पुरुषके संबंधोंकी विवेचना करने वाली टॉल्स्टायकी एक प्रसिद्ध कहानी। —अनु०

ऊंचा उठाना है, पर वह पापालयोंका संगठन करती है, अर्थात् स्त्रियोंके एक ऐसे वर्गका संचालन करती है, जो अपना शारीरिक तथा आध्यात्मिक पतन करके पुरुषोंकी काल्पनिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करती है; तथा अविवाहित पुरुष बिना किसी आत्म-प्रतारणाके पापरत होते हैं।

मैं यह कहना चाहता था कि यह अनुचित है। कुछ लोगोंकी स्वास्थ्य-रक्षाके लिए दूसरोंके शरीर तथा आत्माका नाश किया जाय, यह कहना उसी प्रकार बुरा है, जिस प्रकार यह कहना कि अपने स्वास्थ्य-लाभके लिए दूसरोंका खून पिया जाय।

मेरी समझमें इससे स्वभावतः यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रत्येक व्यक्तिको इस बुराईसे बचना चाहिए। और इन बुराइयोंसे बचनेका एक उपाय यह है कि मनुष्य अनीतिपूर्ण शिक्षाओंको स्वीकार करनेसे इंकार कर दे, चाहे झूठे विज्ञान उन शिक्षाओंका समर्थन ही क्यों न करते हों। दूसरे, वह यह भलीभांति समझ ले कि जिस विषयोपभोगमें पुरुष अपने कार्योंके परिणाम, अर्थात् संतानोत्पत्तिसे, अपनेको मुक्त रखता है, तथा उसका संपूर्ण उत्तर-दायित्व स्त्रीपर डाल देता है, जो कृत्रिम संतति निरोधके उपायोंका आश्रय लेती है, वह विषयोपभोग अनीतिपूर्ण है, वह कायरता है; अतः जो अविवाहित पुरुष कायर नहीं बनना चाहते, उन्हें इस प्रकार के व्यभिचारसे बचना चाहिए।

यदि पुरुषोंको संयमशील जीवन बिताना है तो उन्हें अपना जीवन-क्रम सरल बना लेना चाहिए। उन्हें न तो शराब पीनी चाहिए और न अधिक भोजन करना चाहिए। मांसाहार छोड़ देना चाहिए। उन्हें परिश्रमसे कभी मुंह न मोड़ना चाहिए (केवल कसरत ही काफी नहीं है, बल्कि शरीरको थका देने वाला सच्चा परिश्रम करना चाहिए) उन्हें पर-स्त्रियोंसे कभी व्यभिचार न करना चाहिए, उनकी तरफ वैसी ही दृष्टि रखनी चाहिए, जैसी

दृष्टि वे अपनी माता, बहन, निकटकी रिश्तेदार अथवा मित्र-पत्नियोंके प्रति रखते हैं। प्रत्येक मनुष्यको अपने आस-पास इस प्रकारके सैकड़ों उदाहरण मिल जायंगे कि संयमशील जीवन बिताना नितांत संभव है, और विलासी-जीवनकी अपेक्षा वह कम खतरनाक तथा स्वास्थ्यके लिए कम हानिकारक होता है।

यह तो हुई पहली बात।

दूसरी बात, फैशनेबल समाजमें यह धारणा बंध जानेसे कि विषयोपभोग न केवल एक स्वास्थ्यदायक तथा आनंददायक वस्तु है, बल्कि वह जीवनका एक काव्यपूर्ण तथा लोकोत्तर वरदान है, समाजके सभी वर्गोंमें दुराचार एक मामूली-सी बात होगई है (किसानोंमें मुख्यतया फौजी नौकरीके कारण यह बुराई बढ़ी है)। मेरा मत है कि यह अनुचित है, और इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इन बुराइयोंसे बचना चाहिए।

और इन बुराइयोंसे बचनेके लिए स्त्री-पुरुषके प्रेमके संबंधमें जो विचार फैले हुए हैं, उन्हें बदलना आवश्यक है। माता-पिताओं तथा लोकमत-द्वारा लड़के-लड़कियोंको यह शिक्षा मिलनी चाहिए कि विवाहसे पहले तथा बादमें एक दूसरेसे प्रेम करने लगना तथा विषयोपभोगमें प्रवृत्त होना कोई काव्यमय तथा लोकोत्तर अवस्था नहीं है, बल्कि यह तो पशु-जीवनकी एक अवस्था है और मनुष्यकी मर्यादा घटानेवाली है। समाजको पर-स्त्री अथवा पर-पुरुषसे संबंध न रखनेकी वैवाहिक-प्रतिज्ञा भंग करने वालोंकी उसी प्रकार भर्त्सना करनी चाहिए, जिस प्रकार बकाया रुपया न अदा करने वालों तथा व्यापारमें धोखा देने वालोंकी भर्त्सना की जाती है। इस समय तो उपन्यासों, कविताओं, गीतों तथा थियेटरों आदिमें इस प्रकारके दुराचारका गुणगान किया जाता है, जो नितांत अनुचित है।

यह हुई दूसरी बात।

तीसरी बात, विषयोपभोगको मिथ्या महत्त्व देनेके कारण हमारे समाजमें संतानोत्पादनका सच्चा अर्थ नष्ट होगया है। संतानोत्पत्ति वैवाहिक सुखका पवित्र उद्देश्य माना जानेके बजाय वह विषयोपभोगके आनंदमें बाधक मानी जाने लगी है। फलतः डाक्टरोंकी सहायतासे विवाहके पूर्व और पश्चात् स्त्रियोंकी संतानोत्पादनकी शक्ति व्यर्थ करनेके लिए संतति-निरोधके कृत्रिम उपाय अधिकाधिक व्यवहारमें लाये जा रहे हैं। पहले गर्भावस्था तथा गोदमें दूध-पीता बच्चा होनेकी अवस्थामें विषयोपभोग वर्जित था, आज भी पुराने कृषक-परिवारोंमें यह प्रथा प्रचलित है, पर अब गर्भावस्था तथा गोदमें बच्चा होनेकी अवस्थामें भी विषयोपभोग करना एक रिवाज-सा हो गया है।

यह नितांत अनुचित है।

संतति-निरोधके कृत्रिम उपायोंका अवलंबन करना बहुत ही अनुचित है, क्योंकि इससे मनुष्य बच्चोंके पालन-पोषण आदिके चिंता-भारसे मुक्त हो जाता है। दंपति-प्रेमकी सार्थकता संतानोत्पत्तिमें ही है। दूसरे संतति-निरोधका अवलंबन करना एक प्रकारसे जीव-हत्या करना है, जो मनुष्य-जातिमें सबसे जघन्य अपराध माना जाता है। गर्भावस्था तथा गोदमें बच्चा होनेकी अवस्था में विषयोपभोग करनेसे स्त्रीकी शारीरिक, और इससे भी अधिक उसकी आत्मिक-शक्तिका नाश होता है, इसलिए इस अवस्थामें विषयोपभोग बहुत ही बुरा है।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इन बुराइयोंसे बचना चाहिए। इन बुराइयोंसे बचनेके लिए आवश्यक है कि मनुष्य संयमका महत्व समझ ले। मर्यादा-रक्षाके लिए अविवाहित जीवनमें संयम रखना आवश्यक तो है ही, विवाहित जीवनमें भी संयम रखना आवश्यक है।

यह हुई तीसरी बात।

चौथी बात, हमारे वर्तमान समाजमें बच्चोंका पैदा होना विषयानंदमें बाधा, अथवा दुर्भाग्यपूर्ण संयोग माना जाता है; या फिर बच्चोंका पैदा होना तभी तक सुखकर माना जाता है, जब तक वे एक पूर्वनिर्धारित संख्यामें उत्पन्न हों। ऐसी दशामें बच्चोंका पालन-पोषण, उन्हें बड़ा होने पर मानव-जीवनकी समस्याओंका सामना करनेमें समर्थ बनानेकी दृष्टिसे नहीं, बल्कि माता-पिताओंकी आत्म-तुष्टि करनेकी गरजसे किया जाता है। फलतः बच्चोंका लालन-पालन पशुओंके समान होता है; माता-पिताओंकी मुख्य चिंता (तथाकथित झूठा डाक्टरी-विज्ञान इसमें उनका समर्थन करता है), बच्चोंको मनुष्यकी मर्यादाकी शिक्षा देना नहीं, बल्कि उन्हें खूब खिला-पिला कर मोटा-ताजा और सुंदर-सुडौल बनाना, रहती है। (निम्न वर्गके लोग ऐसा नहीं कर पाते, इसका कारण उनकी गरीबी होती है, पर उनकी लालसा तो उच्च वर्गोंके समान ही होती है)। और इस प्रकारसे पाले गए बच्चोंमें, खूब खिला-पिला कर पाले-पोसे गए पशुओं की भांति, अस्वाभाविक रूपसे कच्ची उम्रमें ही दुर्दमनीय विषय-वासना जाग्रत होजाती है, जिससे यौवनावस्था प्राप्त करने पर उन्हें नाना यातनाएं भोगनी पड़ती हैं। उनके चारों ओरका वायुमंडल भी उनकी विषय-वासनाको उत्तेजन देनेमें योग देता है। उनके कपड़े, उनकी किताबें, संगीत, नृत्य, मेले, चित्र, कहानियां, उपन्यास तथा कविताएं, उनके प्रतिदिनके जीवनमें सामनेवाली सभी वस्तुएं उनकी कामुकता बढ़ाती हैं। इसका फल यह होता है कि बहुधा युवक-युवतियां जीवनके बसंतकालमें ही नाना घृणित व्यभिचारों तथा भयंकर रोगोंमें लिप्त होजाती हैं और प्रौढ़ावस्थामें भी चारित्रिक दोष तथा रोग उनका पीछा नहीं छोड़ते।

यह बहुत ही बुरा है।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि बच्चों का पालन-पोषण

पशुओंकी तरह नहीं होना चाहिए तथा उन्हें मोटा-ताजा और सुंदर-सुडौल बनानेके बजाय, दूसरी बातोंकी ओर भी ध्यान देना चाहिए।

यह हुई चौथी बात।

पांचवी बात, हमारे समाजमें युवक-युवतीका प्रेम-व्यापार मानव-जीवनका सर्वोच्च उत्कृष्ट लक्ष्य माना जाता है (जरा हमारे समाजकी कला और काव्य पर दृष्टिपात करिए) इस प्रेम-व्यापारका मूलाधार मौन आकर्षण रहता है। युवक अपने मनके लायक किसी रमणीको ढूंढ़ निकालने और उससे स्वतंत्र प्रेम-संबंध स्थापित करने अथवा विवाह करनेमें तथा युवतियां पुरुषोंको मोहित करनेमें अपने जीवनका सर्वोत्तम काल गंवा देती हैं।

इस प्रकार पुरुषोंकी शक्ति एक निरर्थक तथा हानिकर कार्यमें खर्च हो जाती है। इसी कारण हमारे जीवनमें इतनी मूढ़तापूर्ण विलासिता आगई है; पुरुषोंमें अलसता तथा स्त्रियोंमें निर्लज्जता बढ़ती जाती है, वे कुलटाओंकी देखादेखी नये-नये फैशन ग्रहण करती हैं, और कामाग्नि भड़काने वाले अपने अंगों का प्रदर्शन करनेमें भी संकोच नहीं करतीं।

मैं इसे अनुचित मानता हूं।

यह इसलिए अनुचित है कि कविताओं तथा उपन्यासोंमें स्वतंत्र प्रेम अथवा विवाह करके स्त्री-पुरुषका मिलन चाहे कितना ही ऊंचा क्यों न ठहराया गया हो, पर मनुष्य-जीवनके लिए यह लक्ष्य उसी प्रकार शोभनीय नहीं है, जिस प्रकार बढ़िया पकवानोंसे पेट भर लेना, चाहे बहुतसे लोग इसे जीवनकी नियामत ही क्यों न मानते हों!

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्यको स्त्री-पुरुषका प्रेम कोई लोकोत्तर वस्तु मानना छोड़ देना चाहिए। उसे यह

समझ लेना चाहिए कि मनुष्य चाहे देश-सेवा करना अपने जीवन-का लक्ष्य बनावे, चाहे वह विज्ञान अथवा कलाकी आराधना अपने जीवनका लक्ष्य निश्चित करे (ईश्वरकी आराधना तो दूरकी बात है), पर इनमेंसे एक भी लक्ष्यकी सिद्धि वह विषय-वासनामें पड़ कर नहीं कर सकता। प्रेम तथा विषय-सेवनकी अवस्था जीवनके किसी भी पुनीत लक्ष्यकी पूर्तिमें सहायक नहीं होती, उल्टे वह उसमें बाधक होती है। (चाहे काव्य और उपन्यास इससे उल्टा सिद्ध करनेकी कितनी ही चेष्टा क्यों न करें)।

यह हुई पांचवी बात।

उस कहानीमें मैं जो कुछ कहना चाहता था, वह संक्षेपमें यही है। मैं समझता हूँ कि उस कहानीमें मैंने यह व्यक्त भी कर दिया है। मेरा ख्याल है कि उस कहानीमें विवेचना करके समाज-की जो बुराइयां इंगितकी गई हैं, उन्हें दूर करनेके उपायोंके संबंध-में भले ही मतभेद हों, पर उन विचारोंसे कोई असहमत नहीं हो सकता।

मेरा ख्याल था कि कोई उनसे असहमत हो भी कैसे सकता है। वे विचार मानव-प्रगतिके सर्वथा अनुकूल हैं—मनुष्य-जाति निरंतर उच्छृंखलतासे अधिकाधिक शीलकी ओर बढ़ रही है। वे समाज तथा व्यक्तिके नैतिक आदर्शोंके भी सर्वथा अनुकूल हैं, हम सदैव असंयमकी निंदा तथा संयमकी प्रशंसा करते हैं। पुनः वे विचार बाइबिलकी शिक्षाके अनुसार हैं, जिसे हम अपने सदा-चरण-संबंधी विचारों का मूल मानते हैं।

पर बादमें मेरा यह ख्याल गलत साबित हुआ।

यह सच है कि प्रत्यक्ष रूपसे कोई इन विचारोंका खंडन नहीं करता कि विवाह से पूर्व अथवा बादमें विलासिता बुरी है, कृत्रिम संतति-निरोध अनुचित है, बच्चोंको खिलौना नहीं बनाना चाहिए तथा विषयोपभोग जीवनका सर्वोच्च लक्ष्य नहीं है—

संक्षेपमें कोई भी इस बातका खंडन नहीं करता कि विलासितासे संयम उत्तम है। पर कहा जाता है—'यदि विवाहसे ब्रह्मचर्य उत्तम है तो मनुष्यको उत्तम पथका अनुसरण करना चाहिए। पर यदि वे ऐसा करें तो मनुष्य-जातिका अंत हो जायगा और ऐसा मनुष्य-जाति कभी नहीं चाहेगी।'

मनुष्य-जातिके अंत हो जानेका विचार कोई नया नहीं है। धार्मिक व्यक्ति इसमें पूर्ण श्रद्धा रखते हैं। वैज्ञानिक मानते हैं कि सूर्य दिनों-दिन ठंडा होता जा रहा है, जिससे यही अनिवार्य निष्कर्ष निकलता है। पर इस बातको यहीं छोड़ भी दें, तो भी उक्त आपत्तिके पीछे एक दूसरी बहुत पुरानी गलतफहमी है। कहा जाता है—'यदि मनुष्य पूर्ण ब्रह्मचर्यके आदर्श पर पहुंच जाय तो मनुष्य-जाति ही समाप्त हो जायगी, अतः यह आदर्श गलत है।' पर जो लोग ऐसा तर्क करते हैं वे जान-बूझ कर या बिना जाने दो अलग वस्तुओं—नियम और आदर्श—को एकमें मिला कर गड़बड़ी करते हैं।

ब्रह्मचर्य नियम नहीं, बल्कि एक आदर्श है, अथवा आदर्श जीवनका एक अंग है। आदर्श तभी तक वस्तुतः आदर्श रहता है जब तक उसकी सिद्धि केवल विचारोंमें ही संभव हो, जबतक वह अनंत कालमें सिद्ध होने वाला मालूम पड़े, अतः उसकी प्राप्ति अनंत काल तक संभव मालूम पड़े। यदि आदर्श सिद्ध हो जाय अथवा उसे हम सिद्ध करने योग्य मान सकें तो वह आदर्श नहीं रह जायगा।

पृथ्वी पर स्वर्गकी स्थापना करनेका ईसाका आदर्श ऐसा ही है। पुराने पैगंबरोंने भी इस आदर्शकी भविष्यवाणी पहले ही कर दी थी, उन्होंने कहा था कि वह समय आ रहा है जब तलवारोंसे हल का काम लिया जायगा, भाले पेड़ोंकी कलम काटनेका काम देंगे, शेर और बकरी एक घाट पानी पियेंगे और प्राणीमात्र

प्रेमके बंधनमें बंध जायंगे। मानव-जीवनका चरम उद्देश्य इसी आदर्शकी ओर बढ़ना है। इस आदर्शकी प्राप्तिके लिए ब्रह्मचर्य आवश्यक है। अतः इस आदर्श तथा ब्रह्मचर्यकी प्राप्तिके लिए प्रयत्न करनेमें जीवनका विनाश नहीं होगा; इसके विपरीत यदि इस आदर्शकी प्रतिष्ठा न रही तो जीवनकी प्रगति तथा सच्चे जीवनकी संभावना नष्ट हो जायगी।

ब्रह्मचर्यका पालन करनेसे मानव-जाति नष्ट हो जायगी, यह तर्क वैसा ही है, जैसे यह तर्क करना कि यदि मनुष्य लड़ाई-झगड़े त्याग कर शत्रु और मित्र, सभी प्राणियोंके प्रति प्रेम-धर्मका पालन करनेका प्रयत्न करने लगे तो मनुष्य-जातिका नाश हो जायगा। ऐसे तर्क वे ही लोग करते हैं, जो नीति-शिक्षाके दो भिन्न-भिन्न मार्गोंका भेद नहीं समझते।

जिस प्रकार किसी पथिकको दो प्रकारसे मार्ग-निर्देश किया जा सकता है, उसी प्रकार सत्यके शोधकको भी दो प्रकारसे नीति-शिक्षा दी जा सकती है। एक तो पथिकको बता दिया जाय कि तुम्हें मार्ग पर अमुक-अमुक चिह्न मिलेंगे और उन्हें देखते हुए अपना रास्ता ढूँढ़ते चले जाना। दूसरे पथिकको दिग्सूचक यंत्र देकर मार्ग बता दिया जाय और वह एक ही दिशाको लक्ष्यमें रख कर अपने मार्गमें हेर-फेर करता रहे।

नीति-शिक्षाका पहला मार्ग बाह्याचरणकी शिक्षाका है। मनुष्यको कुछ नियम बता दिये जाते हैं कि अमुक काम करना चाहिए, अमुक काम नहीं करना चाहिए—उदाहरणार्थ चोरी मत कर, शराब मत पी, किसी जीवकी हत्या मत कर, गरीबोंको दान दे, प्रति दिन पांच बार ईश्वर की प्रार्थना कर, आदि आदि। ये धर्म-शिक्षाके बाहरी नियम हैं। हिंदू-धर्म, बौद्ध-धर्म, इसलाम, यहूदी-धर्म तथा पादरी-धर्म (जिसे गलत ढंगसे ईसाई-धर्म कहा जाता है), सभी धर्मोंमें इस प्रकारके बाह्याचरणके नियम हैं।

दूसरा मार्ग आदर्शका निर्देश कर देना है, जिसे मनुष्य कभी प्राप्त नहीं कर पाता, प्राप्त करनेका सतत् प्रयत्न किया करता है; उस आदर्शसे वह कितना दूर है, यह देखकर वह अपनी कमजोरियोंका अंदाज लगाता है और उन्हें दूर करनेकी चेष्टा करता है।

'काया, वाचा, मनसा ईश्वरसे प्रेम कर और अपने पड़ौसीको निजके समान प्यार कर।'

'परम-पिताकी भांति पूर्ण बन।'

ये ईसाके उपदेश हैं।

धर्मके बाहरी नियमोंका पालन करनेकी कसौटी है कि मनुष्यका बाह्याचरण उन नियमोंके अनुकूल हो, और यह संभव है।

ईसाके उपदेशोंका पालन करनेकी कसौटी है कि मनुष्य पूर्ण आदर्श तक न पहुंच सकनेकी अपनी कमजोरियोंके प्रति सतत् सजग रहे (वह यह तो नहीं देख पाता कि वह आदर्शके कितने निकट पहुंच सका है, पर वह यह अवश्य देख लेता है कि वह आदर्शसे कितनी दूर है)।

बाहरी नियमोंका पालन करने वाला मनुष्य खंभे पर टंगी लालटेनके प्रकाशमें खड़ा रहने वाले मनुष्यके समान है। वह लालटेनके प्रकाशमें खड़ा है, उसके चारों ओर प्रकाश है, पर उसे आगे का मार्ग नहीं सूझता। ईसाके उपदेशों पर चलने वाला मनुष्य उस मनुष्यके समान है जो आगे-आगे लालटेन लेकर चल रहा हो। प्रकाश सदा उसके आगे रहता है और वह उसका बराबर अनुसरण करता रहता है; प्रकाशमें उसके सामने बराबर नया मार्ग प्रकट होता रहता है।

एक फारिसी[1] समस्त नियमोंका पालन कर ईश्वरको धन्यवाद

१—यहूदियोंका एक संप्रदाय, जो हजरत मूसाके सभी नियमोंका अक्षरशः पालन करने पर जोर देता था।

देता है। उस धनिक युवकने बचपनसे समस्त नियमोंका पालन किया था, फिर भी वह समझ नहीं पाता था कि उसके अंदर क्या कमी है। उसकी अवस्थामें यह स्वाभाविक था, क्योंकि उसके सामने ऐसी कोई चीज़ नहीं थी जो उसे आगे बढ़नेकी प्रेरणा करे। वह अपनी आयका एक-दसवां हिस्सा दानमें देता था, साप्ताहिक व्रतका पालन करता था, अपने माता-पिताओंका आदर करता था, व्यभिचार, चोरी तथा हत्यासे दूर रहता था, वह सब-कुछ तो करता था।

जो ईसाके उपदेशों पर चलते हैं, उन्हें पूर्णताकी एक सीढ़ी पर पैर रखते ही दूसरी सीढ़ी पर पैर रखनेकी आवश्यकता मालूम पड़ती है, दूसरी सीढ़ी पर पैर रखते ही तीसरी सीढ़ी पर पैर रखनेकी आवश्यकता मालूम पड़ती है, इस प्रकार उनकी प्रगतिका पंथ अनंत रहता है।

ईसाके सच्चे अनुगामियोंको सदा अपनी अपूर्णताका भान रहता है। वे कभी पीछे मुड़कर नहीं देखते कि उन्होंने कितना रास्ता तय किया है, वे सदा आगे देखते हैं कि उन्हें अभी कितना और रास्ता तय करना बाकी है।

ईसाके उपदेशों तथा अन्य धर्मोंके उपदेशोंमें यही भेद है, यह भेद बाहरी आचारोंका नहीं, मार्गका है।

ईसाने जीवनके नियम नहीं बनाये। उन्होंने विवाह अथवा अन्य कोई संस्था नहीं स्थापित की। परन्तु मनुष्योंने उनके उपदेशोंकी विशेषताएं ग्रहण नहीं कीं। वे तो केवल नियमोंका पालन कर अपना बाहरी आचरण शुद्ध रखनेके इच्छुक थे। अतः उन्होंने, उदाहरणार्थ फारिसियोंने, ईसाके शब्दोंका भीतरी अर्थ समझनेकी कोशिश नहीं की। उन्होंने, उनके शब्दोंको पकड़ कर, किंतु उनकी आत्माके ठीक विपरीत, बाहरी नियमोंका एक पोथा रच डाला और इस प्रकार ईसाके सच्चे उपदेशों पर पर्दा डाल दिया।

इन नियमोंको हम पादरियोंके नियम कह सकते हैं, परंतु इन्हें गलत तरीकेसे ईसाई धर्मके सिद्धांत कह कर प्रचारित किया गया है। ये नियम ईसाके सच्चे उपदेशके विरुद्ध हैं। पादरियोंने जीवनके सभी व्यापारोंके संबंधमें नियमोपनियम बना दिये हैं। सरकार कैसे चलाई जाय, क्या-क्या कानून बनाये जायं, युद्ध कैसे हों, गिरजाघरोंके क्या कायदे हों, पूजा-विधि कैसी हो, उन्होंने सभी चीजोंके संबंधमें नियम बनाये हैं। ईसाने कभी विवाह संस्थाकी स्थापना नहीं की। उनके आदेश तो इसके विरुद्ध थे (जैसे, 'अपनी स्त्रीको छोड़ दो और मेरा अनुसरण करो')। परंतु पादरियोंने अपनी ओरसे ईसाका नाम जोड़ कर विवाह-संस्था ईसाई-संस्था करार कर दी है, अर्थात् उन्होंने ऐसे नियमोंकी रचना कर डाली है जिनका पालन करते हुए, उनके कथनानुसार विषयोपभोग भी पूर्णतया पापरहित तथा ईसाई-धर्ममें जायज मान लिया गया है।

यद्यपि ईसाके सच्चे उपदेशोंमें विवाह-संस्थाका कोई स्थान नहीं है, तथापि आज तो यह अवस्था होरही है कि हम न इधर-के रह गए हैं, न उधरके; हमने ईसाकी सच्ची शिक्षाको ग्रहण किये बिना दूसरी शिक्षाका भी त्याग कर दिया है। हम विवाह-विषयक पादरियोंके नियमोंमें भी विश्वास नहीं करते, हम अनुभव करते हैं कि ईसाकी शिक्षाओंमें इनका समावेश नहीं है, दूसरी ओर हम ईसाकी सच्ची शिक्षा—पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन करनेका यत्न करने—से भी अवगत नहीं हैं। अतः विवाहित जीवनके लिए हमारे यहां सुनिश्चित नियम नहीं है। यही कारण है कि यहूदी, मुसल-मान तथा लामा लोगोंकी धार्मिक शिक्षाएं ईसाई धर्मसे निम्न-स्तरकी होते हुए भी, उनमें तथाकथित ईसाइयोंकी अपेक्षा पारि-वारिक बंधन तथा विवाहित जीवनमें सदाचरण बहुत दृढ़ है। उन लोगोंमें विवाहित जीवनके सुनिश्चित नियम हैं। उनमें भी

उप-पत्नीत्व, बहु-पत्नीत्व तथा बहु-पतीत्वकी प्रथाएं हैं, पर उनके यहां इन सबकी एक सीमा है। हमारे यहां कोई सीमा नहीं, हम ढोंग तो करते हैं कि हमारे यहां एक-पत्नीत्व अथवा एक-पतीत्व का पालन होता है, पर उप-पत्नीत्व, बहु-पत्नीत्व तथा बहु-पतीत्व-का दूषण हमारे यहां सबसे अधिक है।

पादरी लोग धनके लोभसे, कुछ धार्मिक कृत्य करके, जिन्हें हम विवाहकी संज्ञा देते हैं, स्त्री-पुरुषका गठबंधन कर देते हैं और हम अपनेको धोखा देते हुए समझते हैं कि हमारे समाजमें एक-पत्नीव्रत अथवा एक पतिव्रतका पालन होता है।

ईसाई विवाह उसी प्रकार अनहोनी बात है, जिस प्रकार ईसाई पूजा,[1] ईसाई उपदेशक, ईसाई पादरी,[2] ईसाई सम्पत्ति, ईसाई सेना, ईसाई अदालत तथा ईसाई सरकार अनहोनी बातें हैं।

पहली तथा उसके बादकी कुछ शताब्दियोंके ईसाइयोंका भी यही मत था।

ईसाई आदर्श तो है—ईश्वर तथा अपने पड़ौसीसे प्रेम करो; ईश्वर तथा अपने पड़ौसीकी सेवाके लिए आत्माहुति कर दो। विषयोपभोग तथा विवाह तो आत्म-सेवा, अपनी सेवा है, इस-लिए वह ईश्वरकी सेवा तथा मनुष्यकी सेवामें बाधक है तथा ईसाई धर्मकी दृष्टिसे वह पाप है।

विवाहसे मनुष्य तथा ईश्वरकी सेवामें कोई सहायता नहीं पहुंचती, भले ही विवाहेच्छु युवक-युवतियोंने मनुष्य-समाजकी सेवा करनेका व्रत ही क्यों न ले लिया हो। यदि इस प्रकारके युवक-युवती मनुष्य-समाजकी सेवा वास्तवमें करना चाहते हैं तो उन्हें विवाह करके नये बच्चे पैदा करनेके बजाय उन लाखों बच्चोंको बचाने तथा उनका पालन-पोषण करनेका यत्न करना

१—मैथ्यू ४, ५-१२, जॉन ४, २१। २—मैथ्यू २३, ८-१०।

चाहिए, जो भोजन (आध्यात्मिक भोजन तो दूरकी बात है, शारीरिक भोजन) के अभावमें मर रहे हैं।

एक ईसाई तो तभी विवाह-बंधनमें फंस सकता है, और उसे पाप नहीं मान सकता, जब वह यह समझ ले कि दुनियामें इस समय जितने बच्चे वर्त्तमान हैं, उन्हें भरपेट अन्न मिल रहा है।

आप ईसाके उपदेशोंको माननेसे भले ही इंकार कर दें—उन उपदेशोंको, जो हमारे जीवनके रग-रगमें व्याप्त हो गए हैं और जिन पर हमारा सारा नीतिशास्त्र बना है, पर यदि आप उन्हें मानते हैं, तो आपको स्वीकार करना पड़ेगा कि उनमें पूर्ण ब्रह्मचर्यके आदर्शका संकेत है।

बाइबिलमें साफ-साफ शब्दोंमें लिखा है, जिसका कोई दूसरा अर्थ ही नहीं निकलता कि पुरुषको दूसरी स्त्री करनेके लिए अपनी पहली स्त्रीका तलाक़ नहीं देना चाहिए, बल्कि जिस स्त्रीसे उसका गठबंधन हुआ है, उसीके साथ उसको रहना चाहिए[1]। दूसरे, किसी भी पुरुषका (अर्थात् वह पुरुष चाहे विवाहित हो या अविवाहित) स्त्री को भोगकी वस्तु मानना पाप है[2]। तीसरे, अविवाहित पुरुषके लिए उत्तम यही है कि वह विवाह न करे, अर्थात् पूर्ण ब्रह्मचारी रहे[3]।

बहुत-से लोगोंको ये विचार विचित्र तथा परस्पर विरोधी मालूम पड़ेंगे। वे परस्पर विरोधी तो नहीं हैं, पर हमारी वर्त्तमान जीवन-धाराके विरुद्ध अवश्य हैं। स्वभावतया प्रश्न उठता है कि किसे सही मानें—इन विचारोंको या अपनी वर्त्तमान जीवन-धाराको? जिस समय मैं अपने वर्त्तमान निष्कर्षों पर पहुंच रहा था, उस समय मेरे मनमें भी यह प्रश्न जोरोंसे उठा था। उस समय मैंने सोचा भी न था कि मेरे विचार मुझे उन

१—मैथ्यू ५, ३१, ३२ तथा १६, ८। २—मैथ्यू ५, २८, २६। ३—मैथ्यू १६, १०-१२।

निष्कर्षों पर ले जायंगे, जिन पर मैं आज पहुंचा हूं। मुझे अपने निष्कर्षोंने चौंका दिया। मैं उन पर विश्वास करना नहीं चाहता था, पर उन पर अविश्वास करना असंभव था। वे हमारी वर्त्तमान जीवन-धाराके चाहे कितनेही विरुद्ध हों, वे स्वयं मेरे पहलेके विचारोंके चाहे कितने ही विरुद्ध हों, पर उन्हें स्वीकार करनेके अलावा मेरे पास और कोई चारा न था।

लोग दलील करते हैं—ये तो सामान्य विचार हैं। हो सकता है कि ये ईसाके उपदेशोंके अनुसार हों। पर इन्हें तो वही मानेंगे, जिनका इनमें विश्वास हो। पर जिंदगी आखिर जिंदगी है। आपने ईसाके अप्राप्य आदर्शका संकेत कर दिया। पर आप संसारके इस सबसे ज्वलंत प्रश्नके संबंधमें मनुष्योंको केवल ईसाके अप्राप्य आदर्शका संकेत करके, उन्हें बीच धारमें नहीं छोड़ सकते। इससे तो बहुत अनिष्ट होनेकी संभावना है। एक भावुक युवक शायद पहले इस आदर्शकी ओर आकर्षित होजाय। पर वह अपनी टेक निभा नहीं सकेगा, उसकी टेक बीच में ही टूट जायगी। उस समय वह न तो कोई नियम जानता होगा और न उन्हें मानेगा, बस उसका घोर अधःपतन हो जायगा।

ईसाका आदर्श दुष्प्राप्य है, अतः वह जीवनका पथ-प्रदर्शन नहीं कर सकता। भले ही हम उसके विषयमें लंबी-चौड़ी बातें कर लें, उसके स्वप्न देख लें, पर वह जीवनमें व्यवहार्य नहीं है, अतः त्याज्य है।

हमें आदर्शकी आवश्यकता नहीं, अपनी सामर्थ्यके अनुसार, समाजकी सामान्य नैतिक अवस्थाके अनुकूल, मार्ग-निर्देशनकी आवश्यकता है। हमें धर्मसम्मत विवाहकी; अथवा पूर्णरूपसे धर्मसम्मत विवाह न भी सही, (मान लीजिए विवाहसे पूर्व पुरुषका अन्य स्त्रियोंसे संबंध रह चुका है, जैसाकि हमारे समाजमें बहुधा होता है) तो भी विवाहकी; अथवा सिविल मैरेजकी

(कानूनमें स्वीकृत स्त्री-पुरुष संबंधकी); अथवा तलाककी छूट सहित विवाह-विधानकी; अथवा (इसी तर्कसे) जापानियोंकी भांति नियतकालके विवाह की; अथवा, क्या बुरा है, चकलोंकी आवश्यकता है। (क्योंकि कुछ लोग कहते हैं कि सड़कों पर खुले आम पापाचारसे चकले अच्छे हैं)।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हम यदि अपनी कमजोरियोंको प्रश्रय देनेके लिए अपना आदर्श नीचा होने देते हैं, तो फिर वह आदर्श किस हद तक नीचे चला जायगा, इसकी कोई सीमा नहीं रहती।

फिर ऊपरकी दलील शुरूसे गलत है। पहले तो यह ख्याल ही गलत है कि पूर्णताके आदर्शको सामने रखकर जीवनका मार्ग-निर्देशन नहीं हो सकता। दूसरे यह सोचना भी गलत है कि मैं तो निराश हो जाऊं और कहूं—'मुझे इसे त्याग देना चाहिए, इसका मेरे लिए कोई उपयोग नहीं, मैं इस तक कभी नहीं पहुंच सकता, या फिर मैं आदर्शको नीचा करके उसे उस स्तर पर ले आऊं, जिस स्तर पर, अपनी कमजोरीके कारण, मैं रहना चाहता हूं।

यह दलील वैसी ही है, जैसे जहाजका कप्तान कहे कि मैं कंपाससे निर्देशित दिशामें नहीं जा सकता, इसलिए मैं कंपास फेंक देता हूं अथवा अब उसकी ओर नहीं देखूंगा (अर्थात् आदर्श त्याग दूंगा); अथवा वह यह कहे कि मैं कंपासकी सुई उसी दिशामें बांधे देता हूं जिस दिशामें मेरा जहाज जारहा है (अर्थात् अपनी कमजोरियोंके अनुरूप आदर्श नीचा कर दूंगा)।

ईसाने हमारे सामने पूर्णताका जो आदर्श रखा है, वह न तो स्वप्न है और न कोई काव्यपूर्ण उपदेश। वह नीतिमय जीवन बितानेके लिए एकमात्र सर्व-सुलभ मार्ग-निर्देशक है। जैसे जहाज-के कप्तानके पास मार्ग-निर्देशनके लिए कंपास होता है, वैसे ही हमारे लिये यह आदर्श है। पर कंपासकी भांति इस पर भी हमारी

पूर्ण आस्था होनी चाहिए।

हम चाहे जिस अवस्थामें हों, ईसाके आदर्शको सामने रख कर, यह जान सकते हैं कि हमें क्या करना चाहिए। परंतु इसके लिए हमें ईसाके उपदेशोंमें पूर्ण श्रद्धा रखनी चाहिए और अन्य उपदेशोंमें विश्वास न करना चाहिए, जिस प्रकार जहाजका कप्तान अपने कंपासमें पूर्ण श्रद्धा रखता है, अपने दायें-बायें नहीं देखता।

कंपासका व्यवहार किस प्रकार किया जाता है, जैसे यह जानना जरूरी है उसी प्रकार यह जानना भी जरूरी है कि ईसाके उपदेशोंका अनुसरण कैसे करना चाहिए। इसके लिए अपनी स्थितिका सदा भान करते रहना परमावश्क है। आदर्शकी दिशा-से हम कितने हटे हुए हैं, इस ज्ञानसे हमें कभी भयभीत न होना चाहिए। मनुष्य चाहे जिस स्तर पर हो, वह सदा आदर्शकी ओर आगे बढ़ सकता है। ऐसी कोई स्थिति नहीं है, जहां पहुंच-कर मनुष्य कह सके कि मैंने उसे पा लिया। इसी प्रकार इससे आगे कोई मार्ग नहीं है, जहां पहुंचनेकी कोई मनुष्य आकांक्षा रख सके।

सामान्य रूपसे ईसाई आदर्शके प्रति, और विशेष रूपसे ब्रह्मचर्यके प्रति मनुष्यकी ऐसी ही वृत्ति होनी चाहिए। चाहे एक निर्दोष बालक हो या एक पतित-से-पतित व्यक्ति, या चाहे इन दोके बीच किसी सीढ़ी पर खड़ा व्यक्ति हो, यदि उसके सामने ईसाके उपदेश तथा उनका आदर्श है तो उसे तत्काल उत्तर मिल जायगा कि उसका क्या जीवन-मार्ग होना चाहिए, उसे क्या करना चाहिए और क्या न करना चाहिए।

'एक निर्दोष बालक या बालिकाको क्या करना चाहिए? उसे अपनेको पवित्र तथा प्रलोभनोंसे दूर रखना चाहिए और ईश्वर तथा मनुष्यकी सेवामें अपनी सारी शक्तियां अर्पित कर देनेके हेतु उसे अपने विचारों तथा भावोंमें अधिकाधिक पवित्रता प्राप्त करनेकी

चेष्टा करनी चाहिए ।

'उस युवक अथवा युवती को क्या करना चाहिए, जो प्रलोभनोंके शिकार बन चुके हैं, जो या तो निरुद्देश्य प्रेमकी कल्पनाओं में लिप्त रहते हैं या किसीके प्रेमपाशमें बंध चुके हैं और इस प्रकार कुछ हद तक मनुष्य तथा ईश्वरकी सेवा करनेके अयोग्य बन चुके हैं ?'

वे भी उपर्युक्त मार्ग पर चलें, पापसे बचें (यह समझ लें कि पाप-मार्ग पर चलने पर प्रलोभन दूर नहीं होगा, बल्कि और बढ़ेगा)। उन्हें अधिकाधिक पवित्र बननेका प्रयत्न करना चाहिए, जिससे वे ईश्वर तथा मनुष्यकी पूर्ण सेवा करनेके योग्य बन सकें।

'वे क्या करें, जिन्होंने प्रलोभनोंका प्रतिकार नहीं किया और पतित हो चुके हैं ?'

उन्हें अपना पतन उचित आनंदोपभोग न मानना चाहिए। जैसा कि आजकल विवाह-संस्कार हो जाने पर माना जाता है। उन्हें अपना पतन एक ऐसा सुख भी न मानना चाहिए, जिसका उपभोग जब-तब दूसरोंके साथ किया जा सकता है। यदि उनका संबंध अपनेसे नीचे दर्जेके किसी स्त्री या पुरुषसे और बिना विवाह-संस्कारके हुआ हो, तो उन्हें इससे क्लेश न करना चाहिए, बल्कि अपने प्रथम पतनको ही सच्चा और अटूट विवाह-बंधन मान लेना चाहिए।

इस प्रकार विवाह-बंधनमें बंध जाने, और उसके फल-स्वरूप संतानोत्पत्ति होनेसे स्त्री-पुरुषकी ईश्वर तथा मनुष्य-समाजकी सेवा करनेकी क्षमता सीमित हो जाती है। विवाहसे पूर्व वे प्रत्यक्ष रूपसे तथा नाना प्रकारसे ईश्वर तथा मनुष्य-समाजकी सेवा कर सकते थे, परंतु विवाह-बंधनमें बँध जानेसे उनका क्षेत्र सीमित हो जाता है। उन्हें चाहिए कि वे अपने बच्चोंका उचित रीतिसे पालन-पोषण करें तथा उन्हें उपयुक्त शिक्षा दें, जिससे वे वयस्क

होने पर ईश्वर तथा मनुष्य-समाजके सेवक बन सकें।

'वे दंपति क्या करें जो अपने बच्चोंका पालन-पोषण कर तथा उन्हें शिक्षा देकर ईश्वर तथा मनुष्य-समाजकी परिमित सेवा कर रहे हैं ?'

उनके लिए भी वही मार्ग है, जो पहले बता चुका हूं। उन्हें प्रलोभनोंसे मुक्त होनेकी चेष्टा करनी चाहिए, अपनेको पवित्र बनानेका यत्न करना चाहिए तथा वैषयिक प्रेमको शुद्ध भाई-बहनके प्रेममें बदलकर पापसे बचना चाहिए, और इस प्रकार ईश्वर तथा मनुष्य-समाजकी सेवा करनेके मार्गमें जो सबसे बड़ी बाधा है, वह दूर कर देनी चाहिए।

इसलिए यह कहना सच नहीं है कि हम ईसाके आदर्शों पर नहीं चल सकते, क्योंकि वह बहुत ऊंचा, पूर्ण तथा अप्राप्य है। हम उस पर इसलिए नहीं चल पाते कि हम अपनेसे झूठ बोलते हैं, अपनेको धोखा देते हैं। जब हम यह कहते हैं कि हमें ईसाके आदर्शकी अपेक्षा अधिक व्यावहारिक नियमोपनियम चाहिएं, तो वास्तवमें हमारे कहनेका यह तात्पर्य नहीं होता कि ईसाका आदर्श बहुत ऊंचा है—क्योंकि हम यदि इन आदर्शों पर न चलेंगे तो हम पापके गढ़ेमें गिर जायंगे; हमारे कहनेका असली अर्थ यह होता है कि हम इन आदर्शोंमें विश्वास नहीं करते और उनके अनुसार आचरण नहीं करना चाहते।

जब हम यह कहते हैं कि एक बार पतन होने पर मनुष्य पापके गढ़ेसे फिर निकल नहीं पाता, तो उससे यह ध्वनि निकलती है कि हमने पहलेसे धारणा बांध ली है कि अपनेसे निम्न-वर्गके साथ संबंध स्थापित हो जाना पाप नहीं, बल्कि मनोरंजनका एक साधन है और हमारे लिए विवाह करके उस पापको धोना जरूरी नहीं। इसके विपरीत यदि हम यह समझते कि इस प्रकार-का पतन पाप है और उसका एक-मात्र प्रायश्चित्त अटूट विवाह-

बंधनमें बंध जाना तथा इसके फलस्वरूप जो संतानें उत्पन्न हों, उन्हें शिक्षादि देकर अपने कर्त्तव्यका पालन करना है तो हम अपने पतनको पापरत होनेका कारण कभी न बनने देते।

मान लीजिए, एक किसान बीज बोना सीखना चाहता है। वह खेतको बुरी तरह बोता है और उसे छोड़ देता है। इसी प्रकार वह दूसरे खेतको और तीसरे खेतको भी बुरी तरह बो कर छोड़ देता है। अब यदि वह यह समझता है कि उसने जिस तरह खेत बोया है, वही खेत बोनेकी सफल रीति है तो वह जमीन और बीज, दोनोंका नुकसान करेगा। इसके अलावा वह कभी ठीक तरहसे खेत बोना भी सीख नहीं सकेगा। ब्रह्मचर्यको ही आदर्श मानो और पतन होने पर, चाहे जिस व्यक्तिके साथ पतन हुआ हो, उसीके साथ आजीवन विवाह-संबंध स्थापित कर लो, और तब तुम्हें स्पष्ट हो जायगा कि ईसाने जो मार्ग-निर्देशन किया है, वह केवल व्यावहारिक ही नहीं, बल्कि एक-मात्र जीवन-मार्ग है।

लोग कहते हैं, 'मनुष्य अपूर्ण है, उससे उसकी सामर्थ्यके अनुसार काम करनेको कहना चाहिए।' यह तर्क ऐसा है जैसे कोई कहे, 'मेरा हाथ कमजोर होनेकी वजहसे मैं सीधी रेखा नहीं खींच सकता, अतः सीधी रेखा खींचनेके लिए मैं टेढ़ी-मेढ़ी रेखाका नमूना अपने सामने रक्खूंगा।'

मेरा हाथ जितना ही कमजोर हो, उतना ही आदर्श नमूना मेरे सामने होना आवश्यक है।

ईसाकी शिक्षाओंसे हम अवगत हैं, अतः हमें अज्ञानी बन कर उनके आदर्शके स्थान पर बाहरी नियमोंकी प्रतिष्ठा नहीं करनी चाहिए। ईसाई-आदर्श मनुष्य-जातिको इसीलिए प्रकट किया गया है कि उसकी विकासकी वर्तमान अवस्थामें वही उसका मार्ग-निर्देशन कर सकता है। मनुष्य-जाति अब बाहरी

धार्मिक नियमोंके युगसे बहुत आगे बढ़ आई है, अब कोई भी बाहरी नियमोंमें विश्वास नहीं करता।

ईसाई शिक्षा ही मनुष्य-जातिका मार्ग-निर्देशन कर सकती है। हम ईसाके आदर्शके स्थान पर बाहरी नियमोंकी प्रतिष्ठा नहीं कर सकते, और हमें ऐसा करना भी नहीं चाहिए। हमें इस आदर्शको अपने शुद्ध रूपमें सदा अपने सामने रखना चाहिए, और उसमें श्रद्धा रखनी चाहिए।

जब तक जहाज किनारे पर रहता है, तब तक तो यह आदेश दिया जा सकता है कि 'अमुक चट्टानसे बचे रहना,' 'अमुक मार्गसे जाना,' 'अमुक मीनारको लक्ष्यमें रखना.' पर जब जहाज किनारा छोड़कर बीच समुद्रमें पहुंच जाता है, तब तो कप्तानको सुदूरवर्त्ती नक्षत्रों तथा अपने कंपासको ही देखकर अपना रास्ता ढूंढ़ना पड़ता है। हमारे पास दोनों साधन मौजूद हैं।

: २ :

डायना

मुझे 'क्रू जर सोनाटा' तथा उसके 'परिशिष्ट'के संबंधमें अनेक पत्र मिले हैं। इससे पता चलता है कि स्त्री-पुरुष संबंधके प्रचलित दृष्टिकोणमें सुधारकी आवश्यकता मैं ही नहीं, बल्कि कितने ही विचारशील स्त्री-पुरुष अनुभव करते हैं। उनकी आवाज इसलिये नहीं सुनाई पड़ती कि वह परंपरागत रूढ़ियोंका जोर-शोरसे समर्थन करने वालोंके शोरोगुलमें डूब जाती है। मुझे जो पत्र मिले हैं, उनमें एक पत्र ७ अक्टूबर १८६० को आया है, इस पत्रके साथ एक छोटी-सी पुस्तिका 'डायना' भी है। पत्र इस प्रकार है—

हम आपको 'डायना' नामकी एक छोटी-सी पुस्तिका भेज रहे हैं। यह मनोविज्ञान तथा शरीर-विज्ञानकी दृष्टिसे स्त्री-पुरुष संबंध पर लिखा गया एक छोटा-सा निबंध है। आपकी 'क्रू जर सोनाटा'

कहानी अमेरिकामें छपनेके बाद कई लोगोंने कहा है कि 'डायना' टाल्सटायके सारे सिद्धांतोंका खुलासा कर देती है। अतः हम आपकी सेवामें यह पुस्तिका अपनी ओरसे भेज रहे हैं, जिससे आप स्वयं इसका निर्णय कर सकें। परमात्मासे हमारी प्रार्थना है कि आपकी मनोकामनाएं पूर्ण हों। भवदीय (हस्ताक्षर), बर्न्स कम्पनी न्यूयार्क।

इससे पहले मुझे फ्रांससे श्रीमती एंजेल फ्रांस्वायसका पत्र और उनकी पुस्तिका मिली थी। उन्होंने अपने पत्रमें सूचित किया है कि स्त्री-पुरुषके संबंधोंमें पवित्रता लानेके उद्देश्यसे दो संस्थाएं काम कर रही हैं, एक इंग्लैंडमें और दूसरी फ्रांसमें। श्रीमती एंजेलकी पुस्तिकामें भी वही विचार व्यक्त किये गए हैं जो 'डायना'में हैं, पर वे कुछ अस्पष्ट तथा रहस्यवादी ढंगसे व्यक्त हुए हैं।

'डायना'में जो विचार व्यक्त किये गए हैं, वे ईसाई शिक्षाओं पर नहीं, बल्कि गैर-ईसाई शिक्षाओं पर आधारित हैं। फिर भी वे अत्यंत नवीन तथा मनोरंजक हैं। उनमें सिद्ध किया गया है कि हमारे समाजमें विवाहित तथा अविवाहित स्त्री-पुरुषोंमें जो दुराचार फैला है वह अत्यंत अविवेकपूर्ण है। मैं पाठकोंके लाभार्थ इन विचारोंको नीचे देता हूं।

पुस्तिका पर आदर्श वाक्य, 'और उन दोनोंका शरीर एक होगा' दिया है। पुस्तिकाका सार इस प्रकार है:—

स्त्री और पुरुषमें केवल शारीरिक भेद ही नहीं, अन्य भेद भी हैं। उनमें अलग-अलग नैतिक गुण होते हैं, पुरुषोंमें ये पुरुषत्व तथा स्त्रियोंमें स्त्रीत्व कहे जाते हैं। स्त्री और पुरुष केवल शारीरिक संमिलनकी इच्छासे ही नहीं, बल्कि इन भिन्न-भिन्न गुणोंके कारण भी एक-दूसरेकी ओर आकर्षित होते हैं। स्त्रियोंका स्त्रीत्व तथा पुरुषोंका पुरुषत्व, दोनोंको एक-दूसरेकी ओर आकर्षित

करता है। दोनों एक-दूसरेको पाकर पूर्ण होते हैं। अतः स्त्री-पुरुषका परस्पर आकर्षण उन्हें आध्यात्मिक तथा शारीरिक, दोनों प्रकारके संमिलनके लिए उत्प्रेरित करता है। दोनों प्रकारके संमिलन एक ही शक्ति के दो अंग हैं और एक-दूसरेसे इतने संबद्ध हैं कि एक अंगकी तृप्तिसे दूसरे अंगकी तृप्तिकी कामना नहीं रह जाती। यदि आध्यात्मिक संमिलनकी कामना पूर्ण होती रहती है तो शारीरिक संमिलनकी कामना या तो धीमी पड़ जाती है या एकदम बुझ जाती है। इसी प्रकार शारीरिक संमिलनका कामना प्रबल होने पर आध्यात्मिक संमिलनकी कामना या तो कमजोर पड़ जाती है या नष्ट हो जाती है। अतः स्त्री-पुरुषका आकर्षण केवल शारीरिक ही नहीं होता, वह दोनों प्रकारका होता है—आध्यात्मिक और शारीरिक। दोनोंमें पूर्णतया आध्यात्मिक संबंध भी हो सकता है, और पूर्णतया शारीरिक भी, जिसमें बच्चे पैदा करना ही उनका काम रह जाता है। इसके अलावा उनके संबंधकी इन दोनोंके बीचकी कई अवस्थाएं भी हो सकती हैं। स्त्री और पुरुष इन दो संबंधोंमें किस संबंधको बढ़ायंगे और किसे घटायेंगे, यह इस पर निर्भर करता है कि वे किस प्रकारके संबंधको उत्तम, धर्मपूर्ण तथा वांछनीय समझते हैं। इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण मिलता है, जहां सगाई होजानेके बाद भी युवक-युवतियोंका संयोग वांछनीय नहीं माना जाता, अतः उन्हें यदि सगाई होनेके बाद सालों एक कमरेमें रखा जाय तो भी वे ब्रह्मचर्यका पालन करेंगे। इससे प्रकट होता है कि स्त्री-पुरुषका संबंध कहां तक उत्तम, धर्मपूर्ण तथा वांछनीय माने जाने वाले विचारोंसे नियमित होता है।

स्त्री और पुरुष इस संबंधसे पूर्णतया सतुष्ट रहते हैं, जिसे वे उत्तम, धर्मपूर्ण तथा वांछनीय मानते हैं, जो बहुत-कुछ उनके व्यक्तिगत विचारों पर निर्भर करता है। पर यदि हम व्यक्तिगत

विचारोंको छोड़ दें और यह प्रश्न करें कि क्या स्त्री-पुरुषोंके संबंधोंकी कोई ऐसी अवस्था है, जो उन्हें अधिक संतोष प्रदान करती है; वह कौन-सी अवस्था है, आध्यात्मिक या शारीरिक ? तो हम स्पष्ट तथा निश्चित रूपसे उत्तर दे सकते हैं (यद्यपि यह उत्तर समाजमें प्रचलित धारणाओंका खंडन करता है) कि स्त्री-पुरुषका सबंध जितना ही शारीरिक होता है, उतनी ही इच्छाएं बढ़ती जाती हैं और संतोप-लाभ नहीं होता।

इसके विपरीत हमारा संबंध जितना ही आध्यात्मिक होता है, हमारी इच्छाएं उतनी ही कम होती हैं और हमें संतोप-लाभ होता है। पारस्परिक संबंध जितना ही शारीरिक होता है, उतना ही अधिक जीवन-शक्तिका क्षय होता है, तथा पारस्परिक संबंध जितना ही अधिक आध्यात्मिक होता है, उतना ही अधिक जीवनमें शांति, सुख तथा बल मिलता है।

पुस्तिकाके लेखकने स्त्री-पुरुषका 'एक शरीर' होजाना, 'अटूट विवाह-बंधनमें बंध जाना,' उच्चतम जीवनके विकासके लिए आवश्यक माना है। लेखकके अनुसार स्त्री-पुरुषोंके लिए प्रौढ़ होने पर विवाह एक प्राकृतिक तथा वांछनीय अवस्था है तथा यह आवश्यक नहीं कि वह केवल शारीरिक संमिलन ही हो; वह पूर्णतया आध्यात्मिक संमिलन भी हो सकता है। स्त्री-पुरुषकी वृत्ति तथा उनके धर्म-अधर्म, वांछनीय-अवांछनीयके विवेकके अनुसार उनका संबंध आध्यात्मिक अथवा शारीरिक होता है, परन्तु यह सिद्ध है कि उनका संबंध जितना आध्यात्मिक होता है, उतना ही उन्हें संतोष-लाभ होता है।

चूंकि लेखकने यह माना है कि स्त्री-पुरुषके आकर्षणकी परिणति आध्यात्मिक संबंध—प्रेम अथवा शारीरिक संबंध—काम, दोनोंमें हो सकती है और वे अपनी इच्छानुसार अपने संबंधोंको एक क्षेत्रसे हटा कर दूसरे क्षेत्रमें लेजानेकी क्षमता रखते

हैं, अतः उसने स्वीकार किया है कि ब्रह्मचर्य असंभव नहीं है। इतना ही नहीं, उसने यह भी कहा है कि स्त्री-पुरुषोंके लिए विवाहसे पहले और बादमें ब्रह्मचर्य पालना शरीरके लिए श्रेयस्कर होता है।

लेखकने अपने कथनोंके प्रमाणमें अनेक दृष्टांत दिये हैं, शरीर-विज्ञानका वर्णन किया है तथा बताया है कि मैथुनसे शरीरमें क्या-क्या प्रतिक्रियाएं होती हैं तथा किस प्रकार वृत्तियोंको प्रेम अथवा कामकी ओर मोड़ा जा सकता है। अपने विचारोंकी पुष्टिमें उसने हर्बर्ट स्पेंसरके इन शब्दोंको उद्धृत किया है—'यदि कोई नियम मानव-जातिके लिए कल्याणकर होता है तो मानव स्वभाव अपनेको उसके अनुकूल बना लेता है, जिससे उस नियमका पालन मनुष्यके लिए आनंददायक होजाता है' तथा लिखा है—इसलिए हमें वर्तमान प्रचलित रूढ़ियों पर निर्भर नहीं रहना चाहिए, हमें तो उस अवस्थाका विचार करना चाहिए, जो मनुष्यको अपने उज्ज्वल भविष्यमें प्राप्त करनी चाहिए।

लेखकने अपने समस्त विचारोंका सार इस प्रकार दिया है—'डायना'में मूल-रूपमें दिखाया गया है कि स्त्री-पुरुपमें दो प्रकारका संबंध हो सकता है, एक तो वैषयिक, दूसरा प्रेममय। यदि संततिकी इच्छा न हो तो उन्हें अपनी वृत्तियां सात्विक प्रेम संबंधकी ओर मोड़नी चाहिएं। इसके लिए उन्हें अपने विचार भी तदनुकूल बना लेने चाहिएं तथा अपनी आदतें भी वैसी ही डालनी चाहिएं। इस प्रकार अनेक कष्टोंसे मुक्ति पा जायंगे तथा संतोषलाभ करेंगे।

पुस्तिकाके अंतमें माता-पिताओंके नाम एलिजा बर्न्सका एक पत्र छपा है। इस पत्र में गोपनीय विषयोंका उल्लेख है। इसका संभवतः उन युवकों पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा जो असंयम तथा

व्यभिचारमें पड़ कर नाना दुख भोग रहे हैं। अतः इस पत्रका ऐसे युवकोंमें, जो अपनी सर्वोत्तम शक्तियोंका क्षय कर रहे हैं, तथा ग़रीब लड़कों व स्कूलों, कालिजोंमें प्रचार करना मंगलकारी होगा।

: ३ :

चयनिका[1]

विषयोपभोगके संबधमें मैं अपने विचार 'क्र ज़र सोनाटाके उपसंहार'में व्यक्त कर चुका हूं। इस सारे प्रश्नका उत्तर एक वाक्यमें दिया जासकता है—मनुष्यको सदा, वह चाहे विवाहित हो या अविवाहित, ब्रह्मचर्यका पालन करनेका यत्न करना चाहिए, जैसाकि ईसाने और उनके बाद पालने उपदेश किया है। यदि वह पूर्ण ब्रह्मचर्यका (स्त्री-संगसे सदा दूर रहना) पालन न कर सके, तो भी उसे यही अपना सर्वोपरि ध्येय बनाना चाहिए। यदि वह संयम न रख सके तो उसे यथासंभव कम-से-कम अपनी इस कमजोरीमें प्रवृत्त होना चाहिए और विषयोपभोगको कभी आनंददायी न मानना चाहिए। मेरे विचारमें सभी विचारशील व्यक्ति इस प्रश्न पर विचार करते हुए इसी निष्कर्ष पर पहुंचेंगे तथा वे इस संबंधमें एकमत हैं।

स्वतंत्र-प्रेम

'एडल्ट' (प्रौढ़)के संपादकने स्वतंत्र प्रेमके संबंधमें एक पत्र भेजा है। यदि मुझे समय मिला तो मैं इस पर लिखना चाहूंगा। शायद मैं लिखूंगा। सबसे अधिक यह इङ्गित करना है कि सारा ज़ोर अपने कार्योंके परिणाम पर विचार किये बिना अधिक-से-अधिक आनंद-लाभ करने पर दिया जाता है। इसके अलावा वे ऐसी बातोंका प्रचार करते हैं, जो प्रचलित हैं और बहुत बुरी हैं।

१-पत्रों तथा डायरियों आदिसे संकलित।

अंकुश न रहने पर अवस्थामें सुधार कैसे हो सकता है ? मैं सभी प्रकारकी कानूनी-बंदिशोंके विरुद्ध हूं, तथा पूर्ण स्वाधीनताके पक्ष-में हूं, पर हमारा ध्येय ब्रह्मचर्य होना चाहिए, आनंद-लाभ नहीं।

आध्यात्मिकताका मुलम्मा

विषयोपभोगसे, प्रेमसे सारी बुराइयां इसीलिए उत्पन्न होती हैं कि हम विषयवासनाको आध्यात्मिक सुखसे, सात्विक प्रेमसे मिला देते हैं। हम वासनाओंकी निंदा करके उन पर अंकुश लगानेकी चेष्टा नहीं करते, इसके विपरीत हम उनपर आध्या-त्मिकताका मुलम्मा चढ़ानेका प्रयत्न करते हैं।

स्त्री-पुरुषके आकषणका कारण

इसी रीतिसे दोनों विचारोंका सामंजस्य होता है। स्त्री-पुरुषके आकर्षणका समस्त कारण विषयेच्छा पर थोपना बड़ा पदार्थ-वादी दृष्टिकोण मालूम पड़ता है, पर वस्तुत: वह अत्यंत आध्या-त्मिक दृष्टिकोण है। जो बातें आध्यात्मिक क्षेत्रकी नहीं हैं, उन्हें उस क्षेत्रसे हटा देने पर ही उसका महत्व पूर्णरूपसे प्रकाशित होता है।

हमारी शिकायत

हमारे नाना दुखोंका कारण विषय-वासना है, पर उसकी निंदा करने, उसपर अंकुश लगानेके बजाय, हम उसे हर प्रकारसे उभाड़नेकी चेष्टा करते हैं। इसके बाद हम शिकायत करते हैं कि हम दुख भोगते हैं।

व्यभिचारी पुरुष

व्यभिचारी स्त्री-पुरुषोंमें, शराबियोंकी भांति, एक बेचैनी, एक जिज्ञासा, नित नूतनताकी एक इच्छा होती है, जो अनेकोंसे संबंध करनेके कारण उत्पन्न होती है। एक व्यभिचारी व्यक्ति संयम कर सकता है, परंतु उसकी स्थिति शराबी जैसी होती है,

संयमकी लगाम जरा ढीली होते ही वह फिर व्यभिचारके गढ़ेमें गिर पड़ता है।

प्रलोभनोंसे संघर्ष

प्रलोभनोंके विरुद्ध संघर्षमें, विजय प्राप्त करनेका विचार पहलेसे ही अपने सामने रख लेने पर, हम कमजोर पड़ जाते हैं। हम पहलेसे ही विजय प्राप्त करनेके विचारसे अपना पग आगे बढ़ाते हैं। हम अपनी सामर्थ्यसे बाहरका काम अपने लिए नियत कर लेते हैं, जिसे पूरा कर पाना या न कर पाना हमारे हाथमें नहीं है। संन्यासियोंकी भांति हम पहलेसे ही अपने मनमें कहते हैं, 'मैं ब्रह्मचारी रहनेकी प्रतिज्ञा करता हूं'। यहां ब्रह्मचारी रहनेका अर्थ बाह्य ब्रह्मचर्य पालनसे होता है। और यह असंभव है, क्योंकि एक तो हम पहलेसे कल्पना नहीं कर सकते कि हमें किन-किन अवस्थाओंसे होकर गुजरना पड़ेगा, हमारे जीवनमें ऐसी अवस्था भी आ सकती है जब हम प्रलोभनोंका प्रतिकार न कर सकें। दूसरे यह गलत रास्ता है, क्योंकि इस प्रकार हम अपने लक्ष्य, पूर्ण ब्रह्मचर्यकी ओर नहीं बढ़ पाते, बल्कि उल्टी दिशामें जाते हैं।

बाह्य ब्रह्मचर्य पालन अपना लक्ष्य बना लेने पर, मनुष्य या तो संन्यासियोंकी भांति संसार त्याग देते हैं और स्त्रियोंसे दूर भागते हैं, या अपना अंगभंग कर डालते हैं और सबसे मुख्य बातको—संसारमें प्रलोभनोंके विरुद्ध जो आंतरिक विचार-संघर्ष चलता है, उसे आंखोंसे ओट कर देते हैं। यह ऐसा ही हुआ; जैसे कोई सैनिक कहे कि मैं युद्धमें इसी शर्त पर उतरूंगा कि मैं सदा विजयी रहूं। ऐसा सैनिक सदा वास्तविक शत्रुओंसे बचेगा और काल्पनिक शत्रुओंसे लड़ेगा। वह युद्ध करना नहीं सीख सकेगा और सदा विफल होता रहेगा।

इसके अलावा, बाह्य-ब्रह्मचर्यका लक्ष्य अपने सामने रख लेना

और यह सोचना कि इससे पूर्ण ब्रह्मचारी बननेमें सहायता मिलेगी, अनिष्टकारी होता है; क्योंकि प्रलोभनों का सामना पग-पग पर रहता है और पतन होने पर निराशा आ घेरती है और कभी-कभी अपने लक्ष्य पर ही संदेह होने लगता है। ऐसा मनुष्य सोचने लगता है—'ब्रह्मचारी बनना असंभव है, मैंने अपने सामने गलत लक्ष्य रखा।' और वह एकदम व्यभिचारके गढ़ेमें गिर पड़ता है। यह ऐसा ही हुआ; जैसे कोई योद्धा टोना बांधकर चले और सोचे कि यह टोना मृत्यु या आघातसे मेरी रक्षा करेगा। इसके बाद जरा-सा आघात या खरोंचा लगते ही वह अपना पुरुषार्थ खो बैठता है और मैदानसे भाग खड़ा होता है। मनुष्यका लक्ष्य यह होना चाहिए कि वह अपने चरित्र, अपने स्वभाव तथा अपने अतीत व वर्तमान अवस्थाके अनुकूल अधिक-से-अधिक ब्रह्मचर्य-की साधना करे। यह साधना मनुष्योंके सामने नहीं, बल्कि-ईश्वर-को साक्षी रखकर करनी चाहिए, क्योंकि मनुष्योंको पता नहीं रहता कि हमें कितना संघर्ष करना पड़ रहा है। ऐसा करने पर कोई भी बाधा हमारी प्रगति नहीं रोक पाती, प्रलोभन हमारा कुछ बिगाड़ नहीं पाते और हम बराबर अपने अनंत लक्ष्यकी ओर—पाशविकता त्याग कर ईश्वरकी ओर बढ़ते जाते हैं।

ईसाई शिक्षाम विवाहका विधान नहीं

ईसाई शिक्षामें जीवनकी व्याख्या नहीं की गई है, केवल आदर्शकी दिशाका संकेत किया गया है। इसी प्रकार स्त्री-पुरुष संबंधके बारेमें भी। पर ईसाई शिक्षाको हृदयंगम न करने वाले लोग व्याख्याएं ढूंढ़ते हैं। ऐसे ही लोगोंके लिए पादरियोंने विवाहका विधान खड़ा कर दिया है, ईसाई शिक्षामें विवाहका विधान नहीं है। चाहे स्त्री-पुरुष संबंधका प्रश्न हो, चाहे हिंसा, क्रोध आदिके अन्य प्रश्न, हमें अपना आदर्श कभी नीचा नहीं करना चाहिए, उसे कभी मलिन नहीं होने देना चाहिए। परन्तु

पादरियोंने विवाहके संबंधमें ऐसा ही किया है।

ब्रह्मचर्य और विवाह

ईसाई धर्मका मर्म न समझनेके कारण, मनुष्योंको बहुधा ईसाई और गैर-ईसाईमें बांट दिया जाता है। सबसे मोटा श्रेणी-विभाजन बपतिस्मा पाये हुए लोगोंको ईसाई पुकारना है। जो लोग ईसाकी शिक्षाओंके अनुसार शुद्ध पारिवारिक जीवन बिता रहे हों, तथा हत्या आदि जघन्य पापोंके दोषी न हों, उन्हें ईसाई मानना तथा इसके विरुद्ध जीवन बिताने वालोंको ईसाई न मानना, यह श्रेणी-विभाजन यद्यपि कम स्थूल है, फिर भी गलत है। ईसाई धर्ममें ईसाई और गैर-ईसाईके बीच कोई विभाजक-रेखा नहीं है। एक ओर प्रकाश है, पूर्ण आदर्श है, ईसाका मार्ग है, दूसरी ओर अंधकार है, पाशविकता है। और इन दोनों मार्गों-के बीच, ईसाका नाम लेकर ईसाके मार्ग पर बढ़ो।

इसी प्रकार स्त्री-पुरुष संबंधमें, आदर्श पूर्ण ब्रह्मचर्य है। एक ईश्वर-भक्तमें विवाह करनेकी इच्छा उसी प्रकार नहीं होगी, जिस प्रकार उसमें शराब पीनेकी इच्छा न होगी। पर ब्रह्मचर्यकी कई सीढ़ियां हैं। विवाह करें या न करें, जो लोग इस प्रश्नका उत्तर चाहते हैं उनसे यही कहा जा सकता है—यदि तुम्हें ब्रह्मचर्यका आदर्श नहीं दिखाई पड़ता तो कभी घुटने मत टेको, तुम विवाह-के विकारपूर्ण मार्गसे ब्रह्मचर्यकी ओर बढ़ो (चाहे तुम उसे जानो नहीं)। जैसे, मैं यदि लंबा हूं और मुझे अपने सामने ऊंची इमारत दिखाई पड़ती है, पर मेरा साथी नाटा है और उसे वह इमारत नहीं दिखाई पड़ती तो मुझे चाहिए कि मैं उस मार्गमें उसे कोई नीची इमारत दिखा दूं। इसी प्रकार जो लोग ब्रह्मचर्यके आदर्शको नहीं देख पाते, उन्हें उसके मार्गमें विवाहके नीचे आदर्शका संकेत कर देना चाहिए। किंतु हम-आप यह कर लें, पर ईसाने हमारे सामने ब्रह्मचर्यका ही आदर्श रखा है।

संघर्ष ही जीवन-सार है

संघर्ष ही जीवन है, उसीमें जीवनका सार है। विश्राम कहीं नहीं है। आदर्श सदा सामने है और जब तक— मैं यह नहीं कहूंगा कि जब तक मैं उसे प्राप्त नहीं कर लेता—बल्कि जब तक मैं उसकी तरफ बढ़ता नहीं रहता, मुझे चैन नहीं मिलता।

उदाहरणके लिए ब्रह्मचर्यके आदर्शको लीजिए। जो इस आदर्शकी ओर बढ़ रहा है, उसे केवल इतनेसे संतोष नहीं होगा कि उसने कुछ समयके लिए संयम करके अपनी इंद्रियोंका दमन कर लिया, जैसे अपने आसपासके भूखोंको खिला कर आर्थिक क्षेत्रमें संतोष नहीं प्राप्त किया जा सकता। संतोष तभी प्राप्त होगा, जब आदर्श पूर्ण रूपमें सामने हो, उसी पूर्ण रूपमें अपनी कमजोरियोंका ज्ञान तथा आदर्शसे अपनी दूरीका ज्ञान हो तथा उसकी तरफ बढ़नेका प्रयत्न हो। तभी संतोष हो सकता है। उस अवस्थामें संतोष नहीं हो सकता कि हम अपनी आंखें बंद कर लें और आदर्शमें तथा हमारे जीवनमें कितना अंतर है, इस पर दृष्टिपात न करें।

विकारी-भावोंपर विजय प्राप्त करनेके उपाय

वासनाओंसे संघर्ष सबसे कठिन संघर्ष है, बाल्यावस्था तथा वृद्धावस्थाको छोड़कर, अन्य किसी अवस्थामें मनुष्यको इस संघर्षसे छुटकारा नहीं मिलता। अतः हमें संघर्षसे निराश नहीं होना चाहिए और न यह आशा करनी चाहिए कि ऐसी कोई अवस्था प्राप्त हो सकती है जब संघर्षसे मुक्ति मिले। हमें एक क्षणके लिए भी कमजोर नहीं पड़ना चाहिए, तथा विकारी भावों पर विजय प्राप्त करनेके लिए सभी उपाय काममें लाने चाहिएं, शरीर तथा मनको उत्तेजन देनेवाली वस्तुओंसे बचना चाहिए, तथा अपनेको हर समय काममें लगाये रहना चाहिए। यह एक

उपाय हुआ। दूसरा उपाय यह है कि यदि तुम विकारों पर विजय नहीं पा सकते तो विवाह कर लो। ऐसी स्त्री चुन लो जो तुमसे विवाह करनेको राजी हो और इसके बाद प्रतिज्ञा कर लो कि मैं यदि अपने विकारोंका शमन नहीं कर सका तो केवल इसी स्त्रीके साथ पाप करूंगा तथा यदि बच्चे हुए तो उनको शिक्षा दूंगा, तथा अपनी स्त्रीके सहयोगसे ब्रह्मचर्यका पालन करनेका यत्न करूंगा। जितनी जल्दी ब्रह्मचर्यका पालन आरंभ किया जा सके, उतना अच्छा है। और कोई दूसरा उपाय नहीं है। इन उपायोंसे सफलता प्राप्त करनेके लिए आवश्यक है कि हम ईश्वरसे अपना संबंध बढ़ायें—हम बराबर याद रखें कि हम उसीके पाससे आये हैं और उसीके पास लौट जायंगे, तथा इस जीवनका उद्देश्य तथा अर्थ उसकी इच्छाएं पूरी करना है।

जितना ही तुम उसे याद करोगे, उतना ही वह तुम्हारी सहायता करेगा।

एक बात और। यदि तुम्हारा पतन हो जाय तो निराश मत हो। यह मत सोचो कि तुम्हारा नाश होगया—अब तुम्हें अपनी रक्षा करनेकी आवश्यकता नहीं, अब तुम अपनेको पतनके गढ़ेमें गिरने दे सकते हो। इसके विपरीत, यदि तुम्हारा पतन हो जाय, तो तुम्हें दूने उत्साहसे विकारों पर विजय प्राप्त करनेका जीवन-संघर्ष आरंभ करना चाहिए।

काम-ज्वर

काम-ज्वरसे मतिभ्रम उत्पन्न होता है, अथवा मति भ्रष्ट हो जाती है। सारा संसार अंधकारमय हो जाता है। मनुष्य खो जाता है। अंधकार और विफलता ही नजर आती है।

तुमने काम-ज्वरसे पीड़ित होकर बहुत दुख उठाये हैं, विशेष रीतिसे उस समय जब तुमने अपनेको कामके हाथ पूरी तौर सौंप दिया। मैं जानता हूं कि वह किस प्रकार सब वस्तुओं पर छा

जाता है, कुछ कालके लिए हृदय और बुद्धि नष्ट कर देता है। परंतु इससे मुक्ति पानेका एक उपाय यह है कि तुम अपने मनमें समझ लो कि यह एक सपना है, माया-मरीचिका है, जो भंग हो जायगी और तुम पुनः अपना सच्चा स्वरूप जान लोगे। काम-ज्वरसे पीड़ित होनेके समय भी तुम ऐसा भान कर सकते हो। ईश्वर तुम्हारी सहायता करे।

उद्‌बोधन

तुझे भूलना नहीं चाहिए कि तू कभी पूर्ण ब्रह्मचारी नहीं रहा और न रहेगा, पर तू कुछ हद तक ब्रह्मचर्यकी तरफ बढ़ सकता है। और इसमें तुझे कभी निराश नहीं होना चाहिए। प्रलोभनके समय, पतनके समय भी अपने ईप्सित लक्ष्यका ध्यान रख तथा अपने मनमें सोच—'मेरा पतन हो रहा है, मैं पतनसे घृणा करता हूं और मैं जानता हूं कि यदि अभी नहीं तो बादमें विजय मेरी होगी'।

लक्ष्य स्थिर करनेमें गलती

मनुष्यको पूर्ण ब्रह्मचर्यका नहीं, वरन् पूर्ण ब्रह्मचर्यके लिए यत्न करनेका लक्ष्य अपने सामने रखना चाहिए। एक जीवित मनुष्य सच्चे अर्थोंमें पूर्ण ब्रह्मचारी कभी नहीं बन सकता। वह केवल ब्रह्मचारी बननेका यत्न कर सकता है, क्योंकि उसमें काम-विकार हैं। यदि मनुष्यमें काम-विकार न होते तो उसके लिए ब्रह्मचारी बननेकी आवश्यकता भी न होती और ब्रह्मचर्यकी कल्पना भी न की जाती। हमसे गलती यह हो जाया करती है कि हम बहुधा अपना लक्ष्य पूर्ण ब्रह्मचर्यके लिए यत्न करना (जीवनकी परिस्थितियोंमें विकारों पर विजय प्राप्त करने तथा अधिक पवित्र बननेकी आवश्यकता अनुभव करना) नहीं, बल्कि पूर्ण ब्रह्मचर्य (बाह्य ब्रह्मचर्य) निर्धारित कर लेते हैं।

यह गलती बहुत बड़ी है। जो मनुष्य बाह्य ब्रह्मचर्य अपना लक्ष्य बना लेता है, उसके लिए पथभ्रष्ट होने पर, सब कुछ नष्ट हो जाता है और बहुधा उसकी गति, उसका आगेका जीवन अवरुद्ध हो जाता है। जो मनुष्य ब्रह्मचर्यके लिए यत्न करना अपना लक्ष्य बनाता है, उसका पतन कभी नहीं होता, उसकी गति कभी नहीं रुकती, प्रलोभनोंका शिकार होने तथा पतन होने पर वह ब्रह्मचर्यकेलिए यत्न करना त्याग नहीं देता बल्कि दूने उत्साहसे यत्न आरंभ करता है।

प्रेम

जब तक मनुष्य अपने सुखके अलावा और कोई रस नहीं जानता, तब तक 'प्रेम'को वह जीवनमें एक कदम आगे बढ़ना मानता है, पर यदि उसने ईश्वर-प्रेम, मानव-प्रेमका रस चखा है, वह ईसाई बन चुका है, तो इस ऊंची मनःस्थिति पर पहुंच कर, उसके मनमें 'प्रेम'से मुक्ति पानेकी इच्छा होने लगती है। आप इस ईसाई, मानव-प्रेमसे संतुष्ट क्यों नहीं रहते? इसलिए आप क्षमा करें, आपने उसके प्रेमसे अपनेको पवित्र बनानेकी शक्ति मिलनेकी जो बात लिखी है, वह उस स्त्रीका अपमान है। प्रत्येक मनुष्यको, विशेष रीतिसे एक ईसाईको शारीरिक प्रभाव नहीं, बल्कि आध्यात्मिक प्रभाव डालनेकी कामना करनी चाहिए। आपको अपनी पवित्रताकी रक्षा अपनी शक्तिसे करनी चाहिए तथा उसे अपना निःस्वार्थ-प्रेम अर्पित करना चाहिए। ईश्वरके स्थान पर मनुष्यकी प्रतिष्ठा मत करो। ईश्वर आपको आप जितनी आशा करते हैं, उससे बहुत अधिक देगा, और उसका प्रेम भी आपको प्रदान करेगा।

आप लिखते हैं कि मुझे अपने प्रेमसे उसकी रक्षा करनी चाहिए। मेरी समझमें नहीं आया—'किस चीजसे रक्षा? और आप क्यों और किसलिए उस पर दया करते हैं? हमसे बहुधा

गलती होती है कि हम नये ढंगसे विवाह करना चाहते हैं। जैसा कि ईसाने कहा है और पालने उसका समर्थन किया है और हमारी बुद्धि भी उसका समर्थन करती है—'जो उसे पानेकी सामर्थ्य रखता है, उसे उसको पाना चाहिए, और जो उसे पानेकी सामर्थ्य नहीं रखता उसे विवाह कर लेना चाहिए।' और विवाह नये ढंगसे नहीं हो सकता। जिस ढंगसे विवाह होता है, उसी ढंगसे हो सकता है; अर्थात् हम एक साथी चुन लें, उसके प्रति वफादार रहने, उसे मृत्यु-पर्यंत न त्यागनेकी प्रतिज्ञा कर लें और उसके साथ मिलकर खंडित ब्रह्मचर्यको पुनः स्थापित करनेका प्रयत्न करें। यदि हम विवाह-संस्कारोंको तथा अन्य प्रथाओंको महत्व नहीं देते, तो भी हमें विवाहको उसी अर्थमें लेना पड़ेगा, जिस अर्थमें अन्य लोग लेते हैं। विवाह पारस्परिक आकर्षणका परिणाम माना गया है और सदा माना जायगा। और यदि पारस्परिक आकर्षण नहीं है तो विवाह अनुचित है।

प्रेम आनंददायी किस प्रकार हो

मेरा खयाल है कि मैं तुम दोनोंको समझता हूं और मैं चाहता हूं कि मैं तुम्हारे संबंधोंमें जो कुछ कष्टदायी और दुखदायी है, उसको निकाल कर उसे सुखदायी और आनंददायी बनानेमें तुम्हारी सहायता करूं। उसका कहना सही है कि यह उत्कट पारस्परिक प्रेम ईश्वर-प्रेमसे दूरकी चीज है और उसमें बाधा पहुंचाता है। परंतु इसके प्रति तुम्हारा यह उत्कट प्रेम एक सत्य-वस्तु है, जिसकी तुम उसी प्रकार उपेक्षा नहीं कर सकते, जिस प्रकार तुम अपने शरीरकी अथवा व्यक्तिगत स्वभावकी उपेक्षा नहीं कर सकते। किंतु इस तथ्यको स्वीकार करते हुए तुम्हें जो कुछ शिव है, उसे स्वीकार करके जो कुछ अशिव है उसे निकाल फेंकनेकी चेष्टा करनी चाहिए। शिव है अपने प्रेम-पात्रके प्रेममय होनेकी अनुभूति। हमें अपनी अहंपूर्तिकेलिए नहीं, बल्कि ईश्वरकी

इच्छा पूरी करनेमें एक दूसरेकी सहायता करनेके लिए प्रेम करना चाहिए। तब सच्चा आनंद मिलेगा। परंतु इस आनंदकी प्राप्तिके लिए आवश्यक है कि प्रेममें पड़नेसे (और यह तुम्हारी कमजोरी है) ईर्ष्या, जुगुप्सा आदि जो हीन भावनाएं संचारित हो जाती हैं, वे निकाल फेंकी जायं। मेरी सलाह है कि अपनी भावनाओंमें मत जाओ, उन्हें एक-दूसरेको मत लिख भेजो (यह चोरी नहीं, संयम है), बल्कि अपने जीवन, अपने कार्यके बारेमें लिखो। तुम उसे अति प्रेम करते हो और वह तुम्हें करती है, यह वह भी जानती है और तुम भी जानते हो। मनुष्यको एक सीमा तक अपनी भावनाओंको व्यक्त करना चाहिए, उस सीमाका उल्लंघन नहीं करना चाहिए—और तुमने उस सीमाका उल्लंघन किया है। सीमाका उल्लंघन करनेके बाद भावनाओंकी अभिव्यक्ति आनंददायी न हो कर भारपूर्ण हो जाती है।

ईश्वरने हमें प्रेममें आनंद अनुभव करनेकी क्षमता दी है, पर हमें यह न भूलना चाहिए कि वह प्रेम है, अर्थात् अपना नहीं बल्कि दूसरेका उपकार करनेकी इच्छा। और जैसे ही तुम्हारा प्रेम सच्चा हो जायगा, अर्थात् उसका उपकार करनेकी तुम्हारी इच्छा होगी, तुम्हारे उसके प्रेममें जो कुछ भी कष्टदायी है, वह दूर हो जायगा।

प्रेम हानिकारक नहीं हो सकता जब तक वह प्रेम है, प्रेमकी ओटमें अहंताका भूत नहीं है। हमें अपनेसे पूछना चाहिए—क्या मैं उसके उपकारके लिए उसे कभी न देखने तथा उससे संबंध तोड़ लेनेके लिए तैयार हूं। यदि आप तैयार नहीं हैं, तो अहंताका भूत है, जिसे मार डालना चाहिए। मै जानता हूं कि तुम्हारी वृत्ति धर्मपरायण तथा उदार है और यदि तुम पर अहंताका भूत सवार है तो तुम उसे परास्त कर दोगे।

तुम्हारा यह कहना ठीक है कि मनुष्य सबको समान रूपसे

प्यार नहीं कर सकता। केवल एक ही व्यक्तिसे उत्कट प्रेम करने-में सुखानुभूति होती है, पर स्मरण रहे कि प्रेम उसके लिए हो, अपनी अहंपूर्त्तिके लिए नहीं।

प्रेमका स्थान

मैंने 'प्रेम' पर बहुत विचार किया है, परंतु मुझे उसका कोई अर्थ न दिखाई पड़ा। फिर भी मानव-जीवनमें उसका स्थान तथा अर्थ स्पष्ट तथा निश्चित है। वह भोग और ब्रह्मचर्यमें चलने वाले संघर्षकी तीव्रता कम करता है। जो युवक-युवती ब्रह्मचर्य न धारण कर सकें, वे विवाह करनेके लिए प्रेम कर सकते हैं और इस प्रकार १६से लगा कर २० वर्षकी अवस्था तक जीवनके अत्यंत नाजुक समयमें भीषण यंत्रणाओंसे बच सकते हैं। जीवनकी इसी अवस्थामें प्रेमका स्थान है। पर विवाहके बाद प्रेमके लिए स्थान नहीं है, वह कुत्सित होता है।

प्रेम करना अच्छा है या बुरा ?

प्रेम करना अच्छा है या बुरा ? मेरे लिए तो इस प्रश्नका उत्तर स्पष्ट है।

यदि मनुष्य सेवापूर्ण आध्यात्मिक जीवन व्यतीत कर रहा है तो उसके लिए प्रेम तथा विवाह करना पतन है, क्योंकि तब उसे अपनी शक्तिका एक भाग अपनी पत्नी या अपने कुटुंब या अपने प्रेमपात्रको देना होगा। यदि वह पशु-जीवन बिता रहा है, खाना, कमाना तथा लिखना ही उसका जीवन-ध्येय है तो प्रेमकी अवस्था उसके लिए उन्नतिकारी होगी, जैसा कि पशुओं तथा कीड़े-मकोड़ोंमें होता है।

उत्पादक शक्ति

मैं नहीं समझता कि तुम्हें स्त्रियोंसे किसी प्रकारके आध्या-त्मिक संबंधकी आवश्यकता है। स्त्रियोंसे सामाजिक संबंध तभी

आनंददायी होगा, जब तुम्हारे मनमें स्त्री-पुरुष विषयक कोई भेदभाव न रह गया हो, तुम स्त्रियोंको भी अन्य प्राणियोंके समान देखने लगो।

मैं समझता हूँ कि तुम्हें श्रमकी आवश्यकता है। तुम्हें कोई ऐसा श्रम करना चाहिए जिसमें तुम्हारी सारी शक्ति व्यय हो सके।

मुझे एलाइस स्टाकहमकी पुस्तिका अच्छी लगी, जिसमें उन्होंने विषयेच्छाको 'उत्पादक-शक्ति' बताया है। वे कहती हैं कि जब मनुष्यमें अन्य प्राकृतिक इच्छाओंके साथ विषयेच्छा उत्पन्न हो तो उसे जान लेना चाहिए कि यह कोई उत्पादक कार्य करनेकी इच्छा है। यही इच्छा निम्न रूपमें कामेच्छाके रूपमें प्रकट होती है। यह उत्पादक कार्य करनेकी इच्छा है और दृढ़ इच्छा-शक्ति तथा अनवरत प्रयत्नसे अन्य उपयोगी शारीरिक कार्यों अथवा आध्यात्मिक जीवनकी दिशामें मोड़ी जा सकती है।

मैं भी सोचता हूँ कि सचमुच यह एक शक्ति है जो परमात्मा-की इच्छाको पूर्ण करनेमें, पृथ्वी पर स्वर्गकी स्थापना करनेमें सहायक हो सकती है। प्रजननमें इसका उपयोग करके हम इसी कार्यको (पृथ्वी पर स्वर्ग की स्थापनाके कार्यको) अपनी संतति पर डाल देते हैं। ब्रह्मचर्य तथा सेवाव्रत ले लेने पर यह शक्ति परम मंगलमय रूप धारण कर लेती है। इस दिशामें इसे मोड़ना कठिन है, पर असंभव नहीं है। हम देखते हैं कि हमारी आंखोंके सामने सैकड़ों-हजारों आदमियोंने ऐसा करके दिखा दिया है।

यदि तुम अपने विकारोंको जीत सको तो बहुत अच्छा है, यदि न जीत सको तो विवाह कर लो—वह बहुत अच्छा तो नहीं होगा, पर बुरा भी नहीं होगा।

बुरा तो, कामाग्निसे जलते हुए इधर-उधर फिरना है, जैसा कि पालने कहा है।

हां, यह कल्पना कभी मत करो कि स्त्रियोंका सान्निध्य कल्याणकर, करुण-कोमल भावनाओंका संचार करने वाला होता है। यह भ्रम कामुकतासे उत्पन्न होता है। पुरुषोंकी भांति स्त्रियोंका सान्निध्य भी आनंद उत्पन्न करता है, परन्तु स्त्रियों के सान्निध्यमें कोई विशेष आनन्ददायक बात नहीं होती। और यदि ऐसा मालूम पड़े तो उसे कामुकताजनित भ्रम मानो।

दरिद्रताका वरण करो

......तुम पूछते हो कि विकारोंसे संघर्ष करनेका उपाय बताओ। श्रम, उपवास आदि गौण उपायोंमें सब से अधिक कारगर उपाय हैं, दरिद्रताका वरण, अपनेको अकिंचन प्रकट करना, जिससे तुम्हारी ओर कोई स्त्री आकर्षित ही न हो। परन्तु मुख्य तथा सर्वोत्तम उपाय तो विकारों से अनवरत संघर्ष ही है, तुम्हारे दिलमें सदा यह भाव रहना चाहिए कि यह संघर्ष कोई नैमित्तिक या अस्थायी अवस्था नहीं, बल्कि जीवनकी स्थायी और अपरिवर्तनीय अवस्था है।

स्वेच्छापूर्वक नपुंसकत्व

तुमने मुझसे स्कोपत्सी[1] जातिवालोंके विषयमें पूछा है। लोगोंका उन्हें बुरा बताना क्या उचित है? क्या वे मैथ्यूके प्रवचनके १९-वें अध्यायका आशय ठीक-ठीक समझे हैं कि उसके १२-वें पद्यके प्रमाण पर वे अपनी तथा दूसरेकी जननेंद्रिय काट डालते हैं। पहले प्रश्न पर मेरा उत्तर है कि 'बुरे' नहीं हैं। सभी मनुष्य एक ही परमपिताकी संतान हैं, सब आपसमें भाई-भाई हैं, न कोई बुरा है न भला। स्कोपत्सी लोगोंके बारेमें मैंने जो-कुछ सुना है, उससे मालूम पड़ता है कि वे नीतिपूर्ण तथा श्रमपूर्ण

१—रूसी किसानोंका एक सम्प्रदाय जो ब्रह्मचर्य पालनके लिए स्वेच्छासे नपुंसक बन जाता है, अर्थात् अपनी जननेंद्रिय काट डालता है।

जीवन बिताते हैं। दूसरे प्रश्नके संबंधमें, क्या वे प्रवचनका ठीक-ठीक आशय समझते हुए अपनी जननेंद्रियां काट डालते हैं, मेरा निर्भ्रांत उत्तर है कि वे प्रवचनका गलत अर्थ समझे हैं, और अपनी तथा विशेष रीतिसे दूसरोंकी जननेंद्रियां काटकर वे सच्चे ईसाई धर्मके विरुद्ध जाते हैं। ईसाने ब्रह्मचर्यका उपदेश दिया है, पर अन्य सद्गुणोंकी भांति ब्रह्मचर्यका महत्व भी तभी है जब वह श्रद्धाके साथ दृढ़ इच्छाशक्तिसे प्राप्त किया जाय। उस ब्रह्मचर्यका कोई महत्व नहीं, जो पाप करनेकी संभावना ही दूर करके प्राप्त किया जाय। यह तो ऐसा ही हुआ जैसे कोई मनुष्य अधिक खानेके प्रलोभनसे बचनेके लिए कोई ऐसी दवा खा ले कि मंदाग्नि उत्पन्न होजाय या युद्ध न करनेके लिए अपनी बाहें बांध ले; या गाली न देनेके लिए अपनी जबान काट डाले। ईश्वरने मनुष्यको वैसा ही बनाया है, जैसा वह है। उसने उसके विकारपूर्ण शरीरमें आत्मा प्रतिष्ठित की है, जिससे वह शारीरिक विकारोंको अपने वशमें कर सके (जीवनका यही उद्देश्य है)। परमात्माने मनुष्यको सर्वांग पूर्ण शरीर इसलिए नहीं दिया कि वह ईश्वरके कार्यमें संशोधन करने के लिए अपनेको विकलांग बना ले।

स्त्री और पुरुष एक-दूसरेकी ओर इसीलिए आकर्षित होते हैं कि वे जिस पूर्णताको नहीं प्राप्त कर सके, वह अगली पीढ़ीके लिए संभव हो जाय। धन्य है उस दयानिधानकी इस चातुरीको! मनुष्य पूर्ण बननेके लिए बनाया गया है; 'अपने स्वर्गीय पिताके समान पूर्ण बन!' पूर्णताका एक चिह्न ब्रह्मचर्य-प्राप्ति है—सच्चा ब्रह्मचर्य; मनसा, वाचा, कर्मणा; विषयवासनासे पूर्ण मुक्ति। यदि मनुष्य पूर्ण बन जाय और ब्रह्मचर्यका पालन करने लगे तो मानव-जातिका जीवनोद्देश्य पूरा होजाय, फिर पृथ्वी पर जन्म लेनेकी कोई आवश्यकता न रह जाय, मनुष्य फरिश्ते बन जायं जो विवाह नहीं करते। परन्तु अभी मनुष्य पूर्ण नहीं बन सका

है, इसलिए वह नई पीढ़ीको जन्म देता है और नई पीढ़ी ईश्वरकी आज्ञाओंका पालन करती हुई अपना जीवन-यापन करती है। इस प्रकार मानव-जाति उत्तरोत्तर पूर्णताके निकट पहुंच रही है। यदि मनुष्य स्कोपत्सी लोगोंके उपदेश पर चलने लगे तो मानव-जाति पूर्णता प्राप्त किये बिना ही, ईश्वरकी इच्छा पूरी किये बिना ही, अंतको प्राप्त होज

मेरे स्कोपत्सी लोगोंको गलत माननेका पहला कारण तो यह है। दूसरा कारण यह है कि बाइबिलकी शिक्षा मंगलकारी है। (ईसाने कहा है—मेरे पथ पर चलना बड़ा सरल और कष्ट-रहित है), और उसमें हिंसाका निषेध है। अतः दूसरोंको दुःख और कष्ट देना पाप तो है ही, अपनेको भी विकलांग बनाना तथा कष्ट देना ईसाई धर्मके विरुद्ध है।

तीसरा कारण यह है कि स्कोपत्सी लोगोंने मैथ्यूके प्रवचनके १६-वें अध्यायके १२-वें पद्यका अर्थ स्पष्टतया गलत लगाया है। यह सारा अध्याय विवाहके सम्बन्धमें है। ईसाने विवाहका निषेध नहीं किया, बल्कि पत्नियां बदलने अर्थात् तलाकका निषेध किया है। इस प्रकार विवाहावस्थामें भी ईसाने अधिक-से-अधिक संयम पालनेकी आज्ञा दी है, मनुष्योंको एक पत्नीव्रतका पालन करना चाहिए। जब स्त्रियोंने उनसे कहा (पद्य १०) कि इस प्रकार का संयम पालन अर्थात् एक पत्नीव्रत तो बड़ा कठिन है तो उन्होंने उत्तर दिया—यद्यपि सभी लोग जन्मजात नपुंसकों अथवा मनुष्य द्वारा बनाये गए नपुंसकोंकी भांति संयम पालन नहीं कर सकते, परन्तु कुछ लोग ऐसे हैं जिन्होंने स्वर्ग प्राप्ति के लिए अपनेको नपुंसक बना लिया है, अर्थात् आत्मबलसे काम विकारको जीत लिया है, और लोगोंको उन्हींका अनुकरण करना चाहिए। यहां 'कुछ लोग ऐसे हैं जिन्होंने स्वर्ग-प्राप्तिके लिए अपनेको नपुंसक बना लिया है,' इन शब्दोंका अर्थ शरीर पर आत्माकी विजय

करनी चाहिए। इनसे यह अर्थ नहीं निकलता कि शरीरको विकलांग बना लिया जाय, क्योंकि जहां पर शरीरको विकलांग बनाने का उल्लेख है, वहां 'मनुष्य-द्वारा बनाये गए नपुंसकों' लिखा गया है, तथा जहां पर शरीर पर आत्माकी विजयसे तात्पर्य है, वहां 'अपनेको नपुंसक बना लिया है,' लिखा गया है।

मैं १२वें पद्यका यही अर्थ लगाता हूँ, पर मैं इतना और कह दूं कि यदि तुम्हें इन शब्दोंका यह अर्थ ठीक न जंचे तो भी तुम्हें याद रखना चाहिए कि सदा मूल-भाव पर ही जाना उचित है। बलपूर्वक अथवा स्वेच्छासे अंग-भंग करना ईसाई-धर्मके विरुद्ध है।

जघन्य-पाप

मैं समझता हूं विवाह कर लेने पर स्त्री-पुरुषोंका विषयोपभोग करना अनीतिपूर्ण नहीं है। पर इस पर अधिकारी रीतिसे कुछ लिखनेसे पहले मैं इस प्रश्नका सूक्ष्म रीतिसे अध्ययन कर लेना आवश्यक समझता हूँ, क्योंकि इस मतमें भी बहुत सत्यांश है कि केवल अपनी विषयवासना शांत करनेके लिए अपनी स्त्रीसे भी विषय-सेवन करना पाप है। मेरा तो ख्याल है कि विषय-सेवन से बचनेके लिए अपनी इन्द्रियको काट डालना भी उतना ही बड़ा पाप है, जितना कि केवल आनंद-प्राप्तिके लिए विषय-सेवन करना। यह वैसा ही पाप है, जैसे प्रलोभनमें आकर अधिक खाना, या भूखों मर कर प्राण दे देना या विषपान कर लेना। जिस प्रकार मनुष्योंकी सेवा करनेके लिए अन्न खाकर शरीरकी रक्षा करना धर्मसम्मत है, उसी प्रकार वंश-रक्षाके लिए विषय-सेवनभी धर्म-सम्मत है।

स्वेच्छासे नपुंसक बन जाने वालोंका यह कहना सही है कि आध्यात्मिक प्रेमके बिना, केवल शरीर सुखके लिए अपनी स्त्रीसे भी विषयोगभोग करना अनीतिपूर्ण है, व्यभिचार है। पर उनका यह कहना गलत है कि आध्यात्मिक प्रेम होने पर संतानोत्पत्तिके

लिए भी विषयोपभोग करना पाप है। वह पाप नहीं, ईश्वरकी इच्छा पूर्ण करना है।

मेरी समझमें इन्द्रिय काट डालना पाप है। मान लीजिए, एक आदमी अनीतिपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहा है। वह अनाजसे शराब बनाकर पीता है और नशेमें चूर रहता है। वह अनुभव करने लगता है, यह बुरा है, पाप है। अब वह अपनी इस बुरी आदतको छोड़कर अनाजका मनुष्यों तथा पशुओंके लिए सदुपयोग करनेके बजाय, यह सोचता है कि पापमार्गसे बचनेका एकमात्र उपाय यही है कि मैं सारा अनाज ही जला डालूं और वह अपने अनाजके कोठारेमें आग लगा देता है। फल यह होता है कि उसकी पापवृत्ति उसके अंदर ज्यों-की-त्यों वर्तमान रहती है, उसके पड़ौसी पहले हीकी तरह अनाजसे शराब बनाते हैं, पर वह अपनी अथवा अपने परिवार वालोंकी क्षुधा शांत करनेमें असमर्थ होजाता है।

ईश्वरने नन्हे-नन्हे बालकोंकी प्रशंसा व्यर्थ ही नहीं की कि स्वर्गका राज्य उन्हींका है तथा बुद्धिमान लोगोंको भी जो बात समझमें नहीं आती उसे वे सहज ही जान लेते हैं। हम स्वयं इस कथनकी सचाई अनुभव करते हैं। यदि बालक न हों, वे जन्म लेना बंद कर दें तो पृथ्वी पर स्वर्गके राज्यकी आशा भी न रह जाय। वे ही हमारी आशा हैं। हम पापमें डूबे हैं, अपनेको शुद्ध बनाना बहुत कठिन है, परन्तु हमारे परिवार में हर पीढ़ीमें, नई-नई, निर्दोष, शुद्ध आत्माएं जन्म लेती हैं और वे आजन्म शुद्ध बनी रह सकती हैं। नदीका पानी गंदा होता है, पर उसमें कितने ही निर्मल जलके स्रोत मिलते रहते हैं, जिससे नदीके पानीकी भी शुद्ध होनेकी आशा बनी रहती है।

यह प्रश्न बहुत बड़ा है, और इस पर मनन करने में मुझे आनंद मिलता है। मैं केवल इतना ही जानता हूँ कि शरीर-सुखके

लिए विषय-सेवन तथा विषय-सेवनसे बचनेके लिए अपनी इंद्रिय काट डालना दोनों ही समान रूपसे पाप-पूर्ण हैं। परंतु इंद्रिय काट डालना तो जघन्य-पाप है। विषयाधीन होनेमें गर्व नहीं होता, लज्जा होती है; परंतु इंद्रिय काट डालने वालोंको तो अपने कार्य पर लज्जा तक नहीं आती; वे गर्व करते हैं कि उन्होंने प्रलोभनोंसे काम-विकारके संघर्षसे बचनेके लिए ईश्वरका नियम भंग कर डाला। यथार्थतः हमें अपने हृदयके विकारोंको काट फेंकना चाहिए, तब शरीरको काट फेंकना आवश्यक होजायगा। इंद्रियको काट फेंकनेसे प्रलोभनोंसे मुक्ति नहीं मिल जाती। मनुष्य इस जालमें क्यों फंस जाते हैं ? इसका कारण यह है कि हृदयसे काम-विकारको दूर करना बड़ा कठिन है—इसके लिए मनुष्यको अपने हृदयके सभी विकारोंका शमन करना पड़ता है, तथा खुदीको भूल कर तन-मन-धनसे ईश्वरको प्यार करना पड़ता है। यह रास्ता बड़ा लंबा है, यही कारण है कि कुछ लोग भूलसे सोच बैठते हैं कि वे जीवनमें सबसे बड़े पापसे बचनेके लिए यह छोटा रास्ता अख्तियार कर सकते हैं। पर दुःखकी बात तो यह है कि इस प्रकारके छोटे रास्ते ईप्सित लक्ष्यकी ओर नहीं ले जाते, बल्कि किसी दलदलमें ले जाकर फंसा देते हैं।

वंशरक्षाके लिए विवाह

वंशरक्षाके लिए विवाह करना अच्छा और जरूरी है, पर यदि लोग इस ध्येयसे विवाह करते हैं, तो उन्हें अपने अंदर यह शक्ति पैदा करनी चाहिए कि वे अपनी संतानोंको परान्नजीवी बननेके बजाय मनुष्य तथा परमात्माके सच्चे सेवक बननेकी शिक्षा दे सकें। और इसके लिए आवश्यक है कि वे दूसरोंके श्रम पर नहीं, बल्कि अपने श्रम पर जीवन-यापन करनेकी सामर्थ्य अर्जित करें।

हम लोगोंमें यह विचार घुस गया है कि मनुष्यको शादी

तभी करनी चाहिए जब वह दूसरोंकी गर्दन पर अच्छी तरह सवार हो गया हो, अर्थात् 'साधन-संपन्न' होगया हो। परंतु होना चाहिए ठीक इसके विपरीत। उन्हींको शादी करनी चाहिए जो साधन-विहीन होने पर भी जीवन-यापन करने तथा बच्चोंको शिक्षा देनेकी सामर्थ्य रखते हों। ऐसे ही माता-पिता अपने बालकोंको ठीक रीतिसे शिक्षा दे सकते हैं।

विषय-वासना—ईश्वरके नियमोंकी पूर्तिका साधन

विषयेच्छा ईश्वरके बनाये नियमोंको यदि स्वयं न पूरा कर सके तो उसे अपने वंशजों द्वारा पूरा करानेका साधन है। प्रत्येक व्यक्तिके जीवनमें इसकी सत्यताकी अनुभूति होती है। मनुष्य ईश्वरके बनाये नियमोंकी पूर्तिकी दिशामें जितना ही आगे बढ़ता है, उतना ही वह विषय-वासनासे दूर भागता है। इसके विपरीत वह ईश्वरके नियमोंकी पूर्तिसे जितना ही दूर रहता है, उतना ही विषयवासना उसे सताती है।

विषय-भोग इसीलिए इतना आकर्षक है कि वह हमारे एक महान् कर्त्तव्यकी पूर्तिका साधन है मानों वह मनुष्यको एक महान् कर्त्तव्य-बोझसे मुक्त करके उसे अगली पीढ़ी पर डाल देता है। मैं नहीं, तो मेरी संतति स्वर्गीय राज्य प्राप्त करेगी। इसीलिए स्त्रियां अपने बच्चोंमें इतनी तन्मय रहती हैं।

ब्रह्मचर्य-पालनका स्थान प्रथम है

'एन' ने ब्रह्मचर्यके आदर्शके विरुद्ध यह दलील दी कि इसका पालन करनेसे मनुष्य जातिका अंत होजायगा। इसके उत्तरमें मैंने कहा—पादरियोंके विश्वासके अनुसार संसारका अंत एक-न-एक दिन होगा। विज्ञान भी यही कहता है कि एक दिन पृथ्वीके तमाम मनुष्य और स्वयं पृथ्वी नष्ट होजायगी। फिर इस कल्पना से मनुष्य क्यों इतना चौंकता है कि नीतियुक्त सदाचार-पूर्ण

जीवन व्यतीत करनेसे भी मनुष्य जातिका अंत किया जा सकता है ? शायद दोनों बातें साथ-साथ हों। एक लेखमें यही इंगित भी किया गया है। उसमें कहा गया है—ब्रह्मचर्यका पालन करके मनुष्य क्यों न अपनेको ऐसी बुरी मौतसे बचालें ? बिल्कुल ठीक कहा है।

हरशेलने हिसाब लगाया है, जिससे प्रकट होता है कि यदि सृष्टिके आरंभकालसे, इस समयकी भांति मनुष्यकी संख्या प्रति साल दूनी होती रहती, तो (आदम-हौवासे लेकर अब तकका समय ७००० वर्ष मान लेने पर) अब तक मनुष्य-संख्या इतना अधिक बढ़ जाती कि यदि वे एकके सिर पर एक खड़े कर दिये जाते तो वे न केवल पृथ्वीसे सूरज तक, बल्कि उससे २७ गुना अधिक ऊंचे पहुँच जाते।

इससे क्या नतीजा निकला ? सिर्फ दो नतीजे निकलते हैं-- या तो हम प्लेग और युद्धोंकी आवश्यकता मानें या हम ब्रह्मचर्य पालनका प्रयत्न करें। ब्रह्मचर्य पालनसे ही बढ़ती हुई मनुष्य-संख्या रोकी जा सकती है।

युद्धों और प्लेगोंके आंकड़ोंकी ब्रह्मचर्य-पालनके आंकड़ोंसे तुलना मनोरंजक होगी। निश्चय ही इन आंकड़ोंसे प्रकट होगा की दोनों एक-दूसरे-की पूर्त्ति करते हैं। यदि युद्ध और प्लेग कम हुए होंगे तो मनुष्य-जातिके ब्रह्मचर्य-पालन करनेके अधिक उदाहरण मिलेंगे। दोनों संतुलन बनाये रखते हैं।

एक दूसरा नतीजा यह निकलता है, यद्यपि मैं इसे स्पष्ट रूपमें रख सकनेमें समर्थ नहीं हूँ, कि मनुष्य-संख्या घटनेकी चिंता करना, उसका हिसाब लगाने बैठना ठीक नहीं है। केवल प्रेम ही श्रेष्ठ मार्ग है, पर प्रेम अकेला नहीं रहता, उसका आंचल थामे हुए पवित्रता रहती है। मान लीजिए, हम एक ऐसे आदमीकी कल्पना करें, जो एक ओर तो जन-संख्या बढ़ानेके लिए व्यग्र है

और दूसरी ओर उसे घटानेके लिए। दोनों कार्य एक साथ होनेकी आशा करना हास्यास्पद नहीं है। वह तभी हो सकता है जब एकका प्राण लिया जाय और दूसरेको जन्म दिया जाय!

एक ही बात तर्क-संगत है। 'अपने परम पिताकी भांति पूर्ण बन।' और यह पूर्णता पहले ब्रह्मचर्य और फिर प्रेमकी साधनासे मिलती है। इससे निष्कर्ष यह निकला कि ब्रह्मचर्य-पालनका स्थान प्रथम है और वंश-रक्षाका स्थान द्वितीय।

मनुष्यके नियम

'एन'के पत्र पर जिसमें उसने लिखा है कि विषयोपभोग एक पवित्र कार्य है, क्योंकि उससे वंश-रक्षा होती है, मैं यह सोच रहा हूं कि जिस प्रकार मनुष्य पशुओंकी भांति, जीवन-संघर्षके नियमके अधीन है, उसी प्रकार वह पशुओंकी भांति, प्रजननके नियमके भी अधीन है, पर मनुष्य मनुष्य है। उसने जीवन-संघर्ष से भिन्न अपना नियम बनाया है—प्रेम। इसी प्रकार उसने प्रजननके विपरीत अपना नियम बनाया है—ब्रह्मचर्य।

स्त्री-त्यागका अर्थ

'अपने माता-पिता तथा बीवी और बच्चोंको छोड़ कर मेरा अनुसरण कर' बाइबिलके इन शब्दोंका तुमने संकुचित अर्थ लिया है। इन शब्दोंका सही-सही अर्थ क्या है, विशेष रीतिसे जब पारिवारिक बंधनों और धार्मिक कर्त्तव्योंमें वैषम्य उपस्थित हो, तब किस प्रकार समस्या सुलझाई जाय, इस संबंधमें मेरा मत यह है कि समस्याका हल बाहरी नियमों और आदेशोंमें नहीं मिल सकता, उसका हलतो मनुष्य अपनी शक्तिके अनुसार ही कर सकता है। आदर्शतो स्थिर रहेगा, जैसा कि ईसाने कहा है—'अपनी स्त्रीको छोड़ दे और मेरे पीछे चल।' पर इस आदेश का पालन मनुष्य कहां तक कर सकता है, यह तो वह स्वयं या परमात्मा जानता है।

तुम पूछते हो 'अपनी स्त्रीको छोड़ दें' का क्या अर्थ है? क्या इसका अर्थ उसका 'परित्याग' कर देने अथवा उसवा उसके साथ शयन करना तथा संतानोत्पत्ति करना छोड़ देनेसे है ?

निश्चयही 'छोड़ दें' का अर्थ है कि उससे पत्नीत्वका संबंध त्याग दें, और उसे संसारकी अन्य स्त्रियोंकी तरह अपनी बहन मानें। यह आदर्श है। इसकी पूर्ति इस प्रकार करनी चाहिए कि स्त्रीको क्षोभ न हो, उसे दुस्सह न मालूम पड़े, वह ईर्ष्या तथा विकारोंकी शिकार न बन जाय। यह बड़ा कठिन कार्य है। ब्रह्मचर्य-पालनका यत्न करने वाले विवाहित पुरुषोंको अपने ही द्वारा पहुँचाये गए इस घावको भरनेमें बड़ी कठनाइयां उठानी पड़ती हैं। फिर भी मैं केवल एक ही बात सोच और कह सकता हूँ, वह यह कि विवाह होजाने पर भी, पापका बोझ अधिक न बढ़ानेके लिए, अपनी सारी शक्तिसे ब्रह्मचर्य-पालन करनेका यत्न करना चाहिए।

सारा सवाल ब्रह्मचर्यका है

सारा सवाल ब्रह्मचर्यका, ब्रह्मचर्यकी शिक्षा तथा ब्रह्मचर्य-पालनका है। जिस क्षण मनुष्य ब्रह्मचर्यमें अपना कल्याण देखेंगे, उसी क्षण विवाहोंकी संख्या कम हो जायगी।

विवाहेच्छु स्त्री-पुरुषोंको सीख

...यदि आनंदोपभोगके लिए ही विवाह करेंगे तो संयम पालनमें कभी सफलता नहीं मिलेगी। विवाह-बंधन ही जीवनका सर्वोपरि लक्ष्य बनालेना बहुत गलत है। यदि गंभीरतासे विचार करोतो यह गलती स्वतः प्रकट हो जाती है। क्या जीवनका अंतिम लक्ष्य विवाह-बंधन है? विवाह कर लिया। उसके बाद? यदि विवाहसे पहले दोनोंने अपना कोई जीवन-लक्ष्य नहीं बनाया है तो विवाहके बाद कोई लक्ष्य स्थिर करना अति कठिन, लगभग असंभव हो जायगा। यह निश्चित है कि यदि विवाहसे पहिले

दोनोंका समान जीवन-लक्ष्य नहीं है, तो विवाहके बाद दोनोंके दिल एक दूसरेसे मिलेंगे नहीं, बल्कि फिरेंगे। विवाह तभी सुखकर होता है जब दोनोंका जीवन-लक्ष्य समान तथा एक होता है।

दो व्यक्ति एक ही रास्ते पर जाते हुए मिलते हैं, और कहते हैं 'आओ, हम साथ-साथ चलें।' ठीक है। दोनों एक दूसरेको सहारा देते हुए आगे बढ़ेंगे।

पर जब वे पारस्परिक आकर्षणसे खिंचकर अपने अलग-अलग रास्ते छोड़कर एक होते हैं तो वे एक दूसरेकी सहायता नहीं कर पाते। और इसलिए कुछ लोगोंका यह मत है कि जीवनमें आंसू ही आंसू हैं अथवा अधिकांश लोगोंका यह मत कि जीवन क्रीड़ा-स्थल है, दोनों ही गलत हैं।

जीवन सेवाका क्षेत्र है। इसमें मनुष्यको कभी-कभी असीम कष्ट भी उठाने पड़ते हैं, पर बहुधा उसे अनेक प्रकार के आनंद मिलते हैं। सच्चा आनन्द तभी मिलता है जब मनुष्य अपने जीवनको सेवामय बना लेते हैं, वे अपने व्यक्तिगत सुखों से आगे, अपना कोई निश्चित जीवन-लक्ष्य बना लेते हैं। बहुधा विवाह करते समय मनुष्य इस बातको भूल जाते हैं। विवाहका सुख, पिता बननेका सुख, इनकी कल्पनामें ही वे इतने मग्न होजाते हैं कि वे समझने लगते हैं कि यही जीवन है; पर यह भारी गलती है।

यदि माता-पिता कोई विशेष लक्ष्य स्थिर किये बिना ही जीवनयापन और बच्चे पैदा करते हैं, तो कहना होगा कि वे जीवनका प्रश्न हल करना केवल आगेके लिए टाल रहे हैं और इस प्रकार निरुद्देश्य जीवन बितानेका पूरा-पूरा फल उन्हें बादमें भुगतना पड़ेगा। पर वे इस प्रश्नको केवल टाल सकते हैं, उससे बच नहीं सकते, क्योंकि एक दिन उन्हें अपने बच्चोंको शिक्षा देनी ही होगी, स्वयं कोई पथ ज्ञात न होने पर भी उनका पथ-प्रदर्शन करना ही होगा। ऐसी अवस्थामें बहुधा माता-पिता अपने मनुष्यो-

चित गुणों और फलस्वरूप उनसे उत्पन्न होने वाले सुखोंसे हाथ धो बैठते हैं, और केवल बच्चे पैदा करने की कल बन जाते हैं।

इसीलिए मैं विवाहेच्छु सभी स्त्री-पुरुषोंसे कहूंगा कि आपको अभी अपना जीवन चाहे हरा-भरा ही क्यों न दिखाई पड़ता हो, पर आप पहलेसे अपने जीवनके लक्ष्य पर विचार कर लीजिए, उसे स्पष्ट कर लीजिए। इसके लिए आपको अपने जीवनकी वर्त्तमान स्थिति पर तथा अपने अतीत पर नजर डालनी चाहिए। आपके जीवनमें कौन सी चीज महत्वपूर्ण लगती है, कौन-सी व्यर्थ; आप शाश्वत सत्य किसे मानते हैं, आप किन सिद्धांतों पर अपना जीवन घड़ना चाहते हैं; इन सब प्रश्नोंका उत्तर आपको मांगना चाहिए। और आप इन सब बातोंका केवल विचार और निश्चय करके ही न ठहरें, उन पर अमल करना भी शुरू कर दें, क्योंकि मनुष्य जब तक किसी सिद्धांत पर अमल नहीं करता, वह नहीं जानता कि वह उनमें श्रद्धा रखता है या नहीं। मैं तुम्हारे जीवन-सिद्धांतोंको जानता हूं। इन सिद्धांतोंके जिन अंगोंपर तुम अमल कर सको, अभी से उन पर अमल करना शुरू कर दो। मनुष्योंसे प्यार करना चाहिए और उनका प्रेम-भाजन बनना चाहिए—इस जीवनसिद्धांतको पूरीतौरसे अमलमें लानेके लिए मैं इस समय तीन सीखों पर चल रहा हूं। इस दिशामें अति नहीं हो सकती। तुम्हें भी इस समय इन सीखों पर चलना चाहिए।

सबको प्यार करने और उनका प्रेमभाजन बननेके लिए सबसे पहले तो तुम्हें यह चाहिए कि तुम दूसरोंसे अधिक आशा न रखो, क्योंकि यदि तुम दूसरोंसे अधिक आशा रखोगे तो तुम्हें अनेक यंत्रणाएं होंगी। तुम उनसे परिपूर्ण प्रेम नहीं कर सकोगे, उन्हें उलहने देने लगोगे। इस दिशामें तुम अपनेको बहुत कुछ सुधार सकते हो।

दूसरे, केवल शब्दोंसे ही नहीं, बल्कि अपने कार्योंसे भी प्रेम

प्रकट करनेके लिए तुमको सेवाव्रत सीखना चाहिए। इस क्षेत्रमें तुम बहुत-कुछ कर सकते हो।

तीसरे, सबको प्यार करने और उनका प्रेमभाजन बननेके लिए लघुता विनम्रता सीखनी चाहिए। अप्रीतिकर व्यक्तियों तथा चीजों को भी सहन करना चाहिए, सबके प्रति ऐसा व्यवहार करना चाहिए कि उन्हें चोट न पहुंचे और यदि इतना न हो सके, तो कम से-कम इतना तो अवश्य करो कि तुमसे किसी का अपमान न हो। और इस दिशामें भी तुम बहुतकुछ कर सकते हो। सोते-बैठते तुम्हें इन सीखों पर चलनेका प्रयत्न करना चाहिए, और इसमें तुम्हें आनंद मिलेगा। प्रतिदिन मैं कितनी उन्नति कर रहा हूँ, यह देखना बड़ा आनंदप्रद होता है। इसके अलावा तुम्हें शनैः-शनैः लोगोंका प्रेमभाव भी प्राप्त होगा, जो बड़ा सुखकर पुरस्कार होगा।

इसलिए मैं तुम दोनोंको सलाह दूंगा कि पहले तुम दोनों अपने जीवनपर गंभीरतासे विचारकरो, अपने जीवनको गम्भीर बनाओ। क्योंकि केवल इसी रीतिसे तुम जान सकोगे कि तुम एक राहके पथिक हो या नहीं, तुम दोनोंका विवाह-बंधनमें बंधना उचित होगा या नहीं। और यदि तुम्हारा प्रेम सच्चा हो तो तुम्हें भावी जीवनकी तैयारी करनी चाहिए। तुम्हारे जीवनका उद्देश्य विवाह-सुख नहीं, बल्कि अपने निर्मल प्रेममय जीवनसे संसारमें और अधिक प्रेम और सचाईका प्रचार करना होना चाहिए। विवाह इसीलिए किया जाता है कि पति-पत्नी दोनों इस उद्देश्यकी पूर्त्ति-में एक-दूसरेकी सहायता कर सकें।

कहावत है, दोनों छोर मिल जाते हैं। सबसे अधिक स्वार्थ-पूर्ण और अवांछनीय जीवन उनका है, जो शरीर-सुखके लिए विवाह करते हैं। इसके विपरीत सबसे ऊंचा जीवन उनका है, जो ईश्वरकी सेवा करने के लिए, संसारमें सत्य और प्रेमकी वृद्धि

करनेके लिए विवाह करते हैं।

इसलिए सावधान रहो, गलती मत करना। दोनों रास्ते ऊपर से कभी-कभी एक दिखाई पड़ते हैं, पर वस्तुतः हैं जुदे-जुदे। इस-लिए ऊंचे रास्तेको ही क्यों न चुनो? ऊंचा रास्ता चुन लेने पर, उस रास्ते पर चलनेमें अपनी आत्मा की सारी शक्ति लगा देनी चाहिए, थोड़ी शक्ति लगाना व्यर्थ होगा।

सोच-समझ कर विवाह करो

सदाचारपूर्ण जीवन बिताने की इच्छा रखने वाले प्रौढ़ स्त्री-पुरुषोंका अवश्य विवाह कर लेना चाहिए, पर उन्हें केवल प्रेमके आवेशमें नहीं, बल्कि खूब सोच-समझकर विवाह करना चाहिए।

अर्थात्, उन्हें ऐंद्रिक प्रेमके लिए नहीं, बल्कि यह सोच-समझ कर विवाह करना चाहिए कि जिस व्यक्तिसे वे विवाह कर रहे हैं, वह मनुष्योचित जीवन बितानेमें कहां तक सहायक अथवा बाधक होगा (जीवनका गुजारा कैसे होगा, यह सोचना बेकार है, क्योंकि पेट तो किसी-न-किसी प्रकार भर ही जाता है)।

विवाह तभी करो जब अनिवार्य हो जाय

......विवाह करने से पूर्व सौ नहीं, हजार बार सोच-समझ लो। एक निष्ठावान व्यक्तिके लिए किसी स्त्रीसे संबंध करना, विवाह-बंधनमें बंधना सबसे महत्वपूर्ण कृत्य है जिसके परिणामों-को भली-भांति सोच लेना चाहिए। विवाह तभी करो जब कि वह अनिवार्य हो जाय, जैसे कि आदमीके लिए मौत अनिवार्य हो जाती है।

विवाह मृत्युके समान महत्वपूर्ण है

जीवनमें महत्वकी दृष्टिसे मृत्युके बाद विवाहका दूसरा नबंर है। जिस प्रकार वही मृत्यु अच्छी होती है, जो अनिवार्य हो, उसी प्रकार वही विवाह अच्छा होता है, जो अनिवार्य हो।

अकाल-मृत्युकी भांति अकाल-विवाह भी बुरा होता है। विवाह जब अनिवार्य हो जाय वह बुरा नहीं होता।

ख्वामख्वाह गिरने वाले लोग

मैं कहूंगा कि जो लोग विवाहसे बचनेकी गुंजाइश होते हुए भी विवाह करते हैं, वे उन व्यक्तियोंके समान हैं, जो ठोकर खाये बिना ही जमीन पर लेट जाते हैं।... यदि कोई गिर पड़े तो लाचारी है, पर ख्वामख्वाह क्यों गिरा जाय ?

विकट प्रश्न

......विवाहका प्रश्न उतना सरल नहीं, जितना ऊपरसे दीख पड़ता है। प्रेममें पड़ जाना पथभ्रष्ट होना है, पर कोरी सिद्धांतकी बातें हाँकना उससे भी बुरा है। आप कहते हैं, मनुष्य को जो लड़की मिल जाय; उसीसे शादी कर लेना चाहिए, अर्थात् उसे अपने सुखके ख्यालसे लड़की नहीं चुननी चाहिए, इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्य अपनेको भाग्य पर छोड़ दे, अपनी पसंदगी अलग रख कर दूसरेकी पसंदगीके आगे सिर झुका दे। जटिल तथा पाप-पूर्ण परिस्थितियोंमें हम अविवेकसे नहीं चल सकते, क्योंकि यदि हमने उन परिस्थितियोंको सुलझानेकी कोशिश न की, उनसे फंदा तोड़ कर निकल भागनेकी कोशिशकी, तो हम दूसरोंको कष्टमें डाल देंगे। पर यदि भावुकता मनुष्यको एक उलझनमें डालती है, तो कोरी सिद्धांतकी बातें उससे भी गहरी उलझनमें डाल देती हैं। हमको जीवनमें अपना लक्ष्य विवाह नहीं बनाना चाहिए, बल्कि सत्य-पथ पर चलना अपना जीवन-ध्येय बनाना चाहिए और उसी पथ पर सदा चलते रहना चाहिए। उस पथ पर चलते हुए ऐसा समय आयेगा, ऐसे संयोग उपस्थित होंगे जब विवाह न करना असंभव हो जायगा। इस पथ पर चलनेसे मनुष्य न तो कभी गलती करेगा और न पाप का भागी होगा।

यदि कोई महत् उद्देश्य नहीं है

विवाहके संबंधमें रूढ़िगत विचार सर्वविदित हैं—'यदि साधन न होते हुए विवाह करोगे तो इसका फल यह होगा कि बच्चे होंगे, दरिद्रता बढ़ेगी और दो-एक सालमें एक-दूसरेसे ऊब उठोगे......दस सालके भीतर-भीतर कलहसे तुम्हारा जीवन नरक बन जायगा।' यदि विवाह करने वालोंका कोई दूसरा अंदरूनी हेतु नहीं है, तो अन्य रूढ़िगत विचार सही ठहरेंगे, उनमें प्रस्तुत किया गया चित्र सत्य सिद्ध होगा। पर यदि विवाहके भीतर कोई महत् उद्देश्य है, तब अन्य विचार गलत साबित होंगे। जीवनका कोई लक्ष्य न होने पर विवाह दुःखमय सिद्ध होता है।

अपना हृदय अच्छी तरह टटोल लो

तुम दोनों दो बंधनोंसे बंधे हो—अपने समान विश्वासोंके बंधनसे, और प्रेमके भी बंधनसे। मेरे मतमें इनमें से एक बंधन काफी है। सच्चा बंधन निर्मल प्रेमका बंधन है। यदि निर्मल प्रेम है और उससे ऐंद्रिक प्रेम भी उत्पन्न होगया है तो अच्छा है, बंधन और दृढ़ हो जायगा। यदि केवल ऐंद्रिक प्रेम है, तो यद्यपि वह उतना अच्छा नहीं है, फिर भी बुरा नहीं है और निभाया जा सकता है; काफी कशमकश करने पर जीवनकी गाड़ी उससे ठेली जा सकती है। पर यदि न निर्मल प्रेम है, न ऐंद्रिक प्रेम ही, बल्कि दिखावा है, तब स्थिति बड़ी खराब होगी। इसलिए मनुष्यको अपने हृदयको अच्छी तरह टटोल कर देख लेना चाहिए कि उसमें कौन-सा भाव आंदोलित हो रहा है।

उपन्यासोंका आरम्भ और अंत

उपन्यासोंका अंत नायक-नायिकाके विवाहमें होता है। यथार्थमें आरंभ विवाहसे तथा अंत विवाहका अंत हो जाने अर्थात

ब्रह्मचर्य-व्रत ले लेने पर हो। अन्यथा मानव-जीवनका वर्णन आरंभ करके उसे विवाह पर समाप्त कर देना ऐसा ही है, जैसे किसी यात्राका वर्णन आरंभ किया जाय और यात्रीके चोरोंके हाथ लुट जाने पर वह यकायक समाप्त कर दिया जाय।

बाइबिलमें विवाह का आदेश नहीं

बाइबिलमें विवाहका आदेश नहीं है। उसमें विवाहका जिक्र तक नहीं है, हाँ उसमें दुराचार विलासिता तथा जिनका विवाह हो गया है, उनके द्वारा तलाक दिये जानेकी कड़ी निंदाकी गई है। पर उसमें विवाह विधानका रंचमात्र भी उल्लेख नहीं है, यद्यपि पादरी लोग ऐसा कहते हैं।

विवाह पाप है

हां, मेरा ख्याल है कि विवाह-विधान गैर-ईसाई है। ईसाने कभी विवाह नहीं किया। न उनके शिष्योंने विवाह किया। उन्होंने विवाहितोंसे कहा कि अपनी स्त्रियोंकी अदला-बदल मत करो (अर्थात् तलाक मत दो), जिसकी मूसाने अनुमति दे रखी थी (मैथ्यू, अध्याय ३२) अविवाहितोंसे उन्होंने कहा— यथासंभव विवाह मत करो (मैथ्यू अध्याय १६, पद्य १०-१२)। विवाहितों, अविवाहितों दोनोंसे उन्होंने कहा कि स्त्रीको भोग-सामग्री मानना पाप है (मैथ्यू, अध्याय ५ पद्य २८)। (यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यही बात स्त्रियों पर भी लागू है)।

इन प्रवचनोंसे स्वभावतया हम निम्न निष्कर्षों पर पहुँचते हैं:—

यह न मानना चाहिए, जैसा कि लोग मानते हैं कि प्रत्येक स्त्री-पुरुषको विवाह करना चाहिए। इसके विपरीत यह मानना चाहिए कि स्त्री-पुरुष दोनोंके लिए अपनी पवित्रताकी रक्षा करना उत्तम है, जिससे अपनी सारी शक्ति ईश्वर-सेवामें लगा देनेमें कोई बाधा न पहुंचे।

किसी स्त्री या पुरुषका पतन (दूसरेसे शरीर-सम्बन्ध) एक गलती न समझी जाय, जो किसी दूसरे व्यक्तिसे विवाह करके सुधारी जा सकती है, न उसे शारीरिक आवश्यकताकी क्षम्य-पूर्त्ति माना जाय। इसके विपरीत यदि किसी पर-स्त्री या पर-पुरुषसे सम्बन्ध होजाय तो उसे ही अटूट विवाह-बंधन मान लेना चाहिए (मैथ्यू. अध्याय १६, पद्य ४-६) और दम्पतिको अपने पापसे मुक्त होनेके लिए अपने कर्त्तव्योंका पालन करना चाहिए।

विवाह विषय-भोगका साधन नहीं मानना चाहिए, जैसा कि इस समय माना जाता है, बल्कि एक पाप मानना चाहिए जिससे मुक्ति पानेकी चेष्टा करनी चाहिए।

इस पापसे मुक्तिका उपाय है कि पति-पत्नी, दोनों विकारोंके अधीन होनेसे बचें, इस कार्यमें एक दूसरेकी सहायता करें, तथा यथासंभव प्रेमी-प्रेमिकाका नहीं, वरन भाई-बहिनका पवित्र संबंध आपसमें स्थापित करनेका प्रयत्न करें। दूसरे, उन्हें अपने बच्चोंको सुशिक्षित तथा सुसंस्कृत बनाना चाहिए, जो ईश्वर के भावी-सेवक हैं।

इस विचारधारामें, और इस समय समाजमें विवाहके विषय में जो धारणाएं प्रचलित हैं, उनमें बहुत अंतर है। लोगोंके विवाह होते रहेंगे, माता-पिता अपने लड़के-लड़कियोंके विवाह तय करते रहेंगे, पर उनका समस्त दृष्टिकोण बदल जानेसे इसमें महान अंतर हो जायगा। तब विवाह विषय-भोगका क्षम्य साधन नहीं, बल्कि एक पाप माना जायगा। ईसाई-शिक्षाओंपर चलने वाला एक व्यक्ति तभी विवाह करेगा, जब वह अनिवार्य हो जायगा, विवाह कर लेने पर वह विषय-भोगमें नहीं डूब जायगा, बल्कि वह विकारोंका दमन करनेका प्रयत्न करेगा। माता-पिता अपने लड़के-लड़कियोंकी आध्यात्मिक उन्नतिका ध्यान रखेंगे और उनकी शादी करना आवश्यक नहीं मानेंगे, (अर्थात् उनको पतनकी

सलाह अथवा सुविधायें नहीं देंगे), बल्कि उनकी शादी तभी करेंगे जब यह देख लेंगे कि वे अब इसके बिना पवित्र-जीवन बिता नहीं सकते अथवा शादी अनिवार्य हो गई है । विवाहित स्त्री-पुरुष बहुत अधिक बच्चे पैदा करनेकी इच्छा नहीं करेंगे, बल्कि पवित्र-जीवन व्यतीत करनेकी चेष्टा करते हुए थोड़े-से बच्चोंसे खुश होंगे। वे अपनी सारी शक्ति अपने बच्चोंकी (और यदि हो सके तो दूसरोंके बच्चोंकी भी) शिक्षा-दीक्षामें लगायेंगे, और इस प्रकार ईश्वर के भावी-सेवक तैयार करके स्वयं ईश्वर सेवाके भागी बनेंगे।

यह अंतर वैसा ही होगा, जैसा अंतर जीवन-निर्वाहके लिए खानेवालोंमें और रसनाका आनंद लेनेके लिए खानेवालोंमें है । पहले प्रकारके व्यक्ति इसलिए अन्न ग्रहण करते हैं कि वह आवश्यक है। वे भोजनकी तैयारी और उसे खानेमें यथासंभव कम-से-कम समय देते हैं। दूसरे प्रकारके व्यक्ति नाना प्रकारके व्यंजन तैयार करवानेमें, अपनी भूख बढ़ाने तथा अधिक अन्न खानेमें अपना सारा समय लगा देते हैं। उन की दशा उन रोमनों जैसी है, जो खानेके बाद कैकी दवाई लेते थे, जिससे और अधिक भोजन कर सकें।[1]

'ईसाई विवाह नहीं हो सकता

'ईसाई' विवाह न तो कभी हुआ है और न हो सकता है, जैसे कि 'ईसाई' संपत्ति नहीं हो सकती, पर ईसाई-धर्मसे विवाह और संपत्तिका नियमन हो सकता है।

एक सच्चा ईसाई संपत्तिके सम्बन्धमें इस तरहका विचार रखता है—यद्यपि मैं अपनी कमीजको अपनी समझता हूँ, पर यदि कोई दूसरा इसे मांगे तो उसे दे देना मेरा कर्त्तव्य है । इसी

१—बिलकुल यही दशा आजकल कृत्रिम उपायोंसे संतति-निरोध करने वालोंकी भी है।

प्रकार विवाहके संबंधमें भी वह सोचता है--विवाह बंधन अटूट है, विवाहके बाद मैं अपनी पत्नी सहित दो बातें पूरी करनेकी चेष्टा करूंगा, एक तो हम अपने बच्चों-को सुशिक्षित बनायेंगे, दूसरे हम यथासंभव विकारोंसे मुक्त होकर आपसमें शारीरिक संबंधके बजाय, आध्यात्मिक-प्रेम-संबंध स्थापित करेंगे।

मनुष्य जब समझ लेंगे कि विषय-भोग पतन है, पाप है; तथा एक स्त्री के साथ किया हुआ पाप दूसरी स्त्रीके साथ विवाह कर लेनेपर धुल नहीं जाता, बल्कि पापसे मुक्ति तभी होती है जब उसी स्त्रीसे अटूट विवाह-बंधनमें बंध जाय, तभी मनुष्य-जातिमें संयम की मात्रा बढ़ेगी।

प्रेम और विवाह

...जब मैं यह कहता हूँ कि विवाहित मनुष्योंको अमुक-अमुक रीतिसे रहना चाहिए, तब मेरे कहनेका यह मतलब नहीं रहता कि मैं स्वयं इस प्रकार रहता आया हूँ या रह रहाहूँ। इसके विपरीत मैं अपने अनुभवसे जानता हूँ कि कैसे जीवन व्यतीत करना चाहिए, क्योंकि मेरा जीवन जैसा बीता है; वैसा न होना चाहिए।

मैंने जो कुछ कहा है, उसमेंसे मैं कुछ भी वापस नहीं लूंगा, बल्कि उन बातोंपर और जोर देना चाहूँगा। हां, उन बातोंको और समझाने की आवश्यकता अवश्य है। यह आवश्यकता इसलिए है कि हमारा जीवन ईसाके बताये मार्गसे इतना भिन्न है कि इस विषयमें यदि कोई सत्य बात कहता है तो हम चौंक उठते हैं (यह मैं अपने अनुभवसे कहता हूँ) हम उसी प्रकार चौंक उठते हैं, जिस प्रकार कोई धनी व्यापारी इस सीखपर चौंक उठता है कि अपने परिवारके लिए धन इकट्ठा करना पाप है, गिरजाघरोंमें घण्टे लगवानेके लिए भी धन एकत्रित करना अनुचित है, धनका सदु-पयोग उसका दान कर देनेमें है।

इस विषयमें मेरे जो विचार हैं, मैं लिखे देता हूँ:--

अविवाहित स्त्री-पुरुषोंमें प्रेमकी प्रबल भावना उत्पन्न होती है, इस भावनाके फलस्वरूप विवाह होता है; और विवाहके फलस्वरूप बच्चे पैदा होते हैं। स्त्री गर्भधारण करती है, और फलस्वरूप कामवासना मन्द पड़ जाती है--यदि पुरुष विषय-भोगको जायज मानना छोड़दें तो यह बात तत्काल लक्षित होजाय और संभोग बंद हो जाय, जैसा कि गर्भावस्थामे पशुओंमें होता है। कामवासना मन्द पड़ जानेपर, उसके स्थानपर वात्सल्य भावकी, शिशु-संवर्द्धनके भावकी वृद्धि होती है। जब तक बच्चा दूध पीता रहता है. यही भाव प्रबल रहता है। जब बच्चा दूध पीना छोड़ देता है तब पुनः कामाकर्षण बढ़ जाता है (यहीं मनुष्य और पशुमें अन्तर है)।

यह प्राकृतिक स्थिति है, और यही होना चाहिए,भले ही हम इससे चाहे कितनी दूर हों। कारण, एकतो जब स्त्री गर्भवती होती है तब विषयभोग अनुचित होता है, वह केवल कामवासना की तृप्तिके लिए होता है,वह अप्राकृतिक संबंधोंकी भांति हेय और लज्जाजनक होता है। इस अवस्थामें रमण करने वाला पुरुष पशुसे भी गया-बीता होजाता है, क्योंकि वह प्रकृतिके साधारण नियमोंका भी अतिक्रमण करता है। दूसरे, सब लोग यह बात मानते हैं कि विषय भोगसे मनुष्यकी शक्ति क्षीण होती है सबसे अधिक उसकी आध्यात्मिक शक्तिका क्षय होता है। इस प्रकार के विषयभोगका समर्थन करने वाले कहेंगे--नियमशीलता बरती जाय, पर मनुष्य जब प्राकृतिक नियमोंको भंग करता है तो नियमशीलता कहां बरती जासकती है। संभव है नियमशीलता बरतने से पुरुषको कम नुकसान हो। (राम ! राम ! इस पाशविकताको नियम शीलता कहें ?) पर उस स्त्रीके लिए तो यह असंयम घोर दुखदायी होजाता है, जो गर्भवती है, अथवा जिसकी गोद में बच्चा है।

मेरा ख्याल है कि स्त्रियां पिछड़ी हुई तथा चिड़चिड़े स्वभाव की इसी कारण होती हैं; स्त्रियोंको पुरुषोंके बराबर लाने तथा उन्हें ईश्वरकी सच्ची सेविका बनानेके लिए यह आवश्यक है कि वे इस अनाचारसे मुक्त की जायं। यह एक दूरवर्ती आदर्श है, पर है महान। मानव क्यों नहीं इसके लिए अमल करता ?

मेरी विवाहके चित्रकी कल्पना इस प्रकार है—युवक और युवतीमें जब इस प्रकारका प्रेम होजाय कि उनके लिए अलग रहना असंभव होजाय तो वे विवाह करलें। बच्चा पेटमें आने पर वे ऐसे सभी कृत्योंसे बचें, जो शिशु संवर्द्धनके लिए हानिकर हों। इस अवस्थामें वे आजकलकी तरह एक-दूसरेको लुभानेका प्रयत्न न करें, इसके विपरीत प्रलोभनोंसे बचें और आपसमें भाई-बहिन-की तरह रहें। (आज कल तो यह होता है कि पहलेसे बिगड़े हुए पति महोदय अपनी बुरी आदतें अपनी पत्नीमें भी उत्पन्न कर देते हैं, उसमें भी वैषयिकताका विष बो देते हैं। इसका फल यह होता है कि पत्नीको एक साथ प्रेमिका, कथित माता तथा बीमार चिड़चिड़े स्वभाव वाली स्त्री होनेका बोझ वहन करना पड़ता है)। पति महोदय प्रेमिकाके नाते अपनी पत्नीको प्यार करते हैं, माताके नाते उसकी उपेक्षा करते हैं तथा बीमार चिड़-चिड़े स्वभाव वाली स्त्री होनेके नाते उससे घृणा करते हैं, यद्यपि उन्होंने ही उसे बीमार तथा चिड़चिड़ा बनाया है। मैं समझता हूं कि अधिकांश परिवारोंमें क्लेशका यही कारण है। इस प्रकार मैं पति-पत्नीके भाई-बहिनके रूपमें रहनेकी कल्पना करता हूँ। पत्नी शिशुका पोषण करती है, साथ ही उसे प्रतिदिन नैतिक शिक्षायें भी देती है। शिशुके बड़े होजाने पर, माताका दूध पीना छोड़ देने पर ही, पति-पत्नी एक-दूसरेसे प्रेम करते हैं, और कुछ सप्ताहोंके बाद फिर उनका जीवन शांतियुक्त होजाता है।

मेरी समझमें प्रेमका आवेश इञ्जनके भापकी तरह होता है, जो

बंद करके रखी जाती है। इञ्जनमें जब बहुत भाप इकट्ठा होजाती है, तब उसका सेफ्टीवाल्व स्वतः हटकर भापको निकल जानेका रास्ता देदेता है, जिससे वह भाप इञ्जनको ही न तोड़ डाले। इसी प्रकार मनुष्यको भी प्रेमका वेग अधिक होजाने पर ही उसे मार्ग देना चाहिए, अन्यथा उसे रोक रखना चाहिए। इञ्जनका वाल्व भी तभी हटता है जब भाप बहुत इकट्ठा होजाती है, अन्यथा वह मजबूतीसे बंद रखा जाता है। इसी प्रकार प्रेमका वाल्व भी अन्य समय मजबूतीसे बंद रखना चाहिए।' 'जो उसे ग्रहण कर सकें, करें'—बाइबिलके इन शब्दोंका मैं यही आशय[1] लेता हूँ। अर्थात् प्रत्येक मनुष्यको अविवाहित रहनेकी चेष्टा करनी चाहिए, पर विवाह कर लेनेके बाद उसे अपनी पत्नीके साथ भाई-बहिनकी तरह रहना चाहिए। जब भाप बहुत इकट्ठी हो जायगी तो वाल्व अपने आप हट जायगा, पर हमें स्वयं उस वाल्वको नहीं हटाना चाहिए, जैसा कि विषयोपभोगको जायज आनंद मानने वाला व्यक्ति करता है, जब प्रेमका वेग हम रोक न सकें, तभी उसे मार्ग देना क्षम्य है।

'पर मनुष्य यह निर्णय कैसे करे कि अब वह अपने वेगको नहीं रोक सकता?'

इस प्रकारके न मालूम कितने सवाल हैं और वे अबूझ मालूम पड़ते हैं। पर यदि मनुष्य उनको दूसरोंके लिए नहीं, बल्कि अपने लिए और दूसरोंसे हल करवाने नहीं, बल्कि स्वतः हल करने बैठे तो वे अबूझ नहीं रहते। दूसरोंके लिए निश्चित मापदंड हैं। एक वृद्ध मनुष्य वेश्यागामी है, वह घृणित माना जाता है, वही बात एक जवान आदमी करता है, यह उतना बुरा नहीं माना जाता। एक वृद्ध पुरुष अपनी पत्नीसे काम चेष्टायें करता है, यह बुरा माना जाता है, पर उतना बुरा नहीं

[1]-मैथ्यू १९, १२।

जितना एक युवा पुरुषका किसी वेश्याके साथ ऐसी चेष्टाएं क ना। एक युवा पुरुष अपनी स्त्रीके साथ काम-चेष्टायें करता है, यह उससे भी कम बुरा माना जाता है, इसे शोभाजनक मानते हैं। दूसर के लिए इसी प्रकारका मापदंड है और हम सब उसे जानते हैं, विशेष रीतिसे निर्दोष बालक और युवा पुरुष। पर अपने लिए दूसरा मापदंड होता है। प्रत्येक कुमार और कुमारी-की अंतरात्मा बतलायेगी (यद्यपि मिथ्या विचारधाराओंके फल-स्वरूप उसकी आवाज बहुधा दब जाती है) कि पवित्रता एक अमूल्य धन है और उसकी सदा रक्षा करनी चाहिए तथा इस धनकी हानि उसके मनमें शोक और लज्जा उत्पन्न करेगी। अंत-रात्मा पापकर्मसे पूर्व भी और पश्चात् भी कहती है कि यह बुरा है, लज्जापूर्ण है।

संसारमें विषय-भोगको अच्छा समझा जाता है, जैसे कि इञ्जनमें सेफ्ट वाल्वको हटाकर भापका निकल जाना। पर ईश्वरके नियमानुसार तो सत्यतापूर्ण जीवन बिताना, अपनी शक्तिका उपयोग ईश्वर-सेवामें करना ही अच्छा है! अर्थात् मनुष्य को सब मनुष्यों से प्यार करना चाहिए, उसे अपने प्रियजनोंको अपनी पत्नीको अपना प्रेम सबसे पहले देना चाहिए, उसे सत्यमार्ग समझाने में मदद देनी चाहिए, उसे अपने भोग का साधन बनाकर उसकी आध्यात्मिक शक्तियों को कुंठित नहीं करना चाहिए। दूसरे शब्दोंमें भापका सदु-पयोग करना चाहिए और उसे रोक रखने में पूरा जोर लगा देना चाहिए।

'पर इस प्रकार तो मनुष्य जातिका अंत हो जायगा?' सब-से पहले, मनुष्य विषय-भोगसे बचनेकी चाहे जितनी कोशिश करे; पर जब तक सेफ्टीवाल्वकी जरूरत है वह रहेगा और बच्चे पैदा होंगे। दूसरे, हम झूठ क्यों बोलें ? जब हम विषय-

भोगको उचित ठहराते हैं, तब क्या हमें जाति रक्षाकी चिंता सताती है ? हमें वस्तुतः अपने सुखकी चिंता रहती है। हमें साफ-साफ कहना चाहिए । क्या मनुष्य-जाति संसारसे उठ जायगी ? पशुओंका, मनुष्योंका अंत होजायगा ? कितनी भयानक बात लगती है ! प्रलयसे पहलेके सब प्राणी जब नष्ट होगए तो एक दिन मनुष्य-जातिका भी नाश हो जायगा (यदि हम अनंतकाल और आकाशकी दृष्टिसे देखें)। हो जाने दो नाश । मुझे इन दो पैरके पशुओंके नष्ट होजाने पर कोई दुःख नहीं होगा, जबतक संसारमें सच्चा जीवन और सच्चा प्रेम वर्तमान है। यदि विषय-भोगको छोड़ देनेके कारण मनुष्य-जाति नष्ट होजाय तो भी सच्चा प्रेम कदापि नष्ट नहीं हो सकता। वह इतना बढ़ जायगा कि सच्चे प्रेमका रस चख लेने वालोंके लिए मनुष्य-जातिकी संरक्षाकी कोई आवश्यकता नहीं रह जायगी।

ऐंद्रिक प्रेमका एकमात्र यही उद्देश्य है—कि मनुष्योंके इतने ऊंचे उठ जानेकी संभावना नष्ट न होजाय।

इन अस्तव्यस्त पंक्तियोंको पढ़कर समझ लेना कि मैं क्या कहना चाहता हूँ, क्या कह पाया और क्या नहीं कह पाया। ये विचार आकस्मिक नहीं हैं ये मेरी अतरात्मासे, मेरे जीवनसे उत्पन्न हुए हैं। यदि ईश्वरने चाहा तो मैं इन्हें कभी और सुस्पष्ट रूपमें व्यक्त करनेकी चेष्टा करूंगा।

पशुओंसे भी गया बीता

पशुओंमें मैथुन तभी होता है जब संतानोत्पत्तिकी संभावना होती है मूढ़ मनुष्य हर समय मैथुनमें रत रहता है और उसने यह सिद्धांत तक आविष्कृत कर लिया है कि वह आवश्यक है। और इस आवश्यकताका आविष्कार कर लेनेके बाद वह स्त्रीके गर्भवती होने अथवा उसकी गोदमें बच्चा होनेपर भी उसे सताता

है। स्त्री मातृत्व और पत्नीत्वके बोझके नीचे मर मिटती है। हमने स्वयं इस प्रकारके अनाचारसे स्त्रियोंकी विचारशक्ति नष्ट कर डाली है और इसके बाद हम उसके विचारहीन होनेकी शिकायत करते हैं, किताबों और कालिजोंकी सहायतासे उसके मानसिक विकासका प्रयत्न करते हैं। सच मानिए, इन बातोंमें मनुष्य पशुओंसेभी गया-बीता होगया है और उसे कम-से-कम इन बातोंमें अपनेको पशु-जीवनकी सतहपर तो ले आना चाहिए। यह तभी संभव होगा जब वह ज्ञानपूर्वक जीवन आरंभ करे अन्यथा उसकी बुद्धिका उपयोग अपने पाशविक जीवनको और विकृत बनानेमें होता रहता है।

बाइबिलका उत्तर

स्त्री पुरुषका संबंध कहां तक जायज है यह ईसाई धर्मका उतना ही महत्वपूर्ण सवाल है, जितना संपत्तिका सवाल और मैं इसका सदा मनन किया करता हूँ। बाइबिलमें, अन्य सवालोंकी भांति, इस सवालका भी हल दिया है, परंतु हमारा जीवन ईसाके बताये मार्गसे इतना दूर है कि हमारे लिए उस हलपर चल पानेकी बात कौन कहे, उसे समझ पाना भी दूभर होगया है। मैथ्यूके प्रवचनके १६ वें अध्यायमें लिखा है—सभी आदमी इस उपदेशको ग्रहण नहीं कर सकते, इसे केवल वे ही ग्रहण कर सकते हैं जिन्हें वह दिया गया है। संसारमें कुछ जन्मजात नपुंसक होते हैं, कुछ ऐसे होते हैं, जिन्होंने स्वर्ग-प्राप्तिके लिए अपनेको नपुंसक बना लिया है। जो इसको ग्रहण कर सकें, करें (पद्य ११, १२)।

इन पद्योंका बहुत गलत अर्थ लगाया गया है। इनमें साफ-साफ बताया गया है कि मनुष्यको अपनी विषय-वासनाके सम्बन्धमें क्या करना चाहिए? उसे किस दिशामें आगे बढ़नेका प्रयत्न करना चाहिए? आधुनिक भाषामें कहें कि मनुष्यका क्या आदर्श

होना चाहिए ? ईसाने इन प्रश्नोंका उत्तर दिया है—स्वर्ग-प्राप्तिके लिए नपुंसक बन जाओ। जो इस स्थितिको प्राप्त कर सका है, उसने सबसे श्रेष्ठ वस्तु प्राप्त करली है, जिसने इस स्थितिको प्राप्त नहीं किया है, उसे प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिए। 'जो इसको ग्रहण कर सकें, करें।'

मेरे विचारमें मनुष्यको अपने कल्याणके लिए पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करनेका यत्न करना चाहिए। उसे सजग होकर ब्रह्मचर्य की ओर बढ़ना चाहिए, तभी वह ईप्सित अवस्था तक पहुंच सकेगा। लक्ष्य-भेदके लिए लक्ष्यसे ऊपर दृष्टि रखना आवश्यक है। यदि मनुष्य विषय-प्रेम पर दृष्टि रखेगा (चाहे विवाहित जीवनके भीतर ही क्यों नहीं) तो वह निश्चय ही पतनके गढ़ेमें, दुराचारके दलदलमें गिर जायगा। यदि मनुष्य पेटके लिए नहीं, बल्कि जीवन-रक्षाके लिए भोजन करेगा तो अन्नके प्रति उचित दृष्टि-कोण रख सकेगा। पर यदि वह पहले से ही सुस्वादु भोजनके लिए तैयारी कर लेगा तो वह अवश्य रसना-लोलुपतामें फंस जायगा।

हृदय-मंथन

विवाहित जीवनके बारेमें मैंने बहुत-कुछ सोचा है और सोचता रहता हूँ। जब कभी मैं किसी विषय पर गंभीरतापूर्वक विचार करता हूँ, तब यही होता है। मुझे बाहरसे भी प्रेरणा मिलती रहती है।

परसों मुझे अमेरिकाकी एक डाक्टर, श्रीमती एलाइस स्टाक-हम, एम० डी०की पुस्तक प्राप्त हुई है। यह पुस्तक स्वास्थ्य-विचार की दृष्टिसे उत्तम पुस्तक है। जिस विषयपर इतने दिनोंसे हमारा पत्र-व्यवहार चल रहा है; उसपर भी इसमें एक अध्याय है और लेखिका भी ठीक उसी नतीजे पर पहुंची हैं; जिस पर हम पहुँचे हैं। जब आदमी अन्धेरेमें रहता है और उसे अचानक कहींसे

प्रकाश दिखाई पड़ता है तो उसे बड़ा आनन्द मिलता है। यह सोचकर बड़ा दुःख होता है कि अहंकारवश मैंने एक पशुका जीवन बिताया और अब उसे मिटाया नहीं जा सकता। दुख इस लिए होता है कि लोग कहेंगे—तुम कब्रमें पैर लटकाये हो, तुम्हारे लिए यह सब कहना ठीक है, पर तुम्हारा पूर्व जीवन कैसा था? जब हम बूढ़े हो जायेंगे तो हम भी तुम्हारी जैसी बातें करेंगे। पाप-कर्मका यही फल मिलता है—मनुष्य सोचता है मैं तो गया बीता हूँ, मैं परमात्माका पवित्र संदेश प्रचारित करनेके सर्वथा अयोग्य हूं पर उसे यह ढाढ़स बंधती है कि दूसरे लोग ऐसी गलती नहीं करेंगे। परमात्मा तुम्हारा और सबका कल्याण करे।

अधिकार स्त्रीको है

'परिशिष्ट'से संबंधित विषयोंपर विचार करते हुए मैं सोचता हूं कि पहले विवाहका अर्थ था, संपत्तिकी भांति स्त्री प्राप्त कर लेना। युद्धमें बंदी बनाई गई स्त्रियां हरममें डाल ली जाती थीं। पुरुष उन्हें अपनी विषय-वासना तृप्त करनेका खिलौना समझता था। एक विवाह प्रचलित होने पर स्त्रियोंकी संख्या घट गई, पर स्त्रियोंके सम्बन्धमें पुरुषका दृष्टिकोण नहीं बदला। सच्चा संबंध ठीक इससे उल्टा होना चाहिए। पुरुष हमेशा विषयोपभोगके योग्य रहता है और हमेशा संयम भी रख सकता है। स्त्री कुमारीत्व भंग होजानेके बाद, प्रकृतिकी चाह होने पर अपने ऊपर बड़ी कठिनाईसे संयम रख पाती है, बहुधा दो सालमें एक बार उसमें इस प्रकारकी इच्छा प्रबल होती है। इसलिए विषय-वासना तृप्त करनेका अधिकार पुरुषको कदापि नहीं, स्त्रीको ही है। स्त्री के लिए विषय-वासनाकी तृप्ति आनन्दोपभोग नहीं है, जैसा कि पुरुषके लिए है। उसके लिए तो विषय-वासना दुख, कष्ट-सहनका आमंत्रण है। मैं समझता हूँ,

विवाहका रूप इस प्रकार होना चाहिए। दंपति एक-दूसरेके प्रति आध्यात्मिक प्रेमके बंधनसे बंधे रहें। वे प्रतिज्ञा कर लें कि उन्हें बच्चोंकी आवश्यकता होगी तो वे आपसमें ही उत्पन्न करेंगे, अन्यथा ब्रह्मचर्य पालन करेंगे। संभोगकी प्रार्थना पुरुषकी ओरसे नहीं स्त्रीकी ओरसे होनी चाहिए।

स्त्रीका कर्त्तव्य

...सबसे पहले, मैं तुम्हारा यह ख्याल गलत मानता हूँ कि तुम्हें स्वयं बच्चोंके पितासे प्रार्थना नहीं करनी चाहिए। तुमने लिखा है—'मैं न चाहती हूँ न कर सकती हूं।' परन्तु जब बच्चे पैदा होजायं तो स्त्री और पुरुषका सम्बन्ध अटूट होजाता है, पादरियोंके हाथसे विवाह-संस्कार चाहे हुआ हो या न हुआ हो। इसलिए तुम्हारे बच्चोंके पिताकी चाहे जो स्थिति हो, वह चाहे विवाहित हो या अविवाहित, चाहे अच्छा हो या बुरा, मेरा ख्याल है कि तुम्हें उसके पास जाना चाहिए और यदि उसने अपने कर्त्तव्योंकी उपेक्षाकी है तो तुम्हें उसे बताना चाहिए कि उसका कर्त्तव्य अपनी स्त्री तथा बच्चोंकी सेवा करना है। यदि वह तुम्हारी प्रार्थना पर विचार करके तुम्हें झिड़क दे, तुम्हारा अपमान करे तो भी ईश्वरके प्रति, अपने प्रति, बच्चोंके प्रति और सबसे अधिक उसके प्रति तुम्हारा कर्त्तव्य है कि तुम उसे हर तरहसे समझाओ कि वह अपने ही भलेके लिए अपने कर्त्तव्यका पालन करे। तुम उसे विनयके साथ, प्यारके साथ, आग्रहके साथ अपने कर्त्तव्यका भान कराओ, जैसाकि बाइबिलमें वर्णित विधाताने किया था। यह मेरा सुविचारित तथा हार्दिक मत है। तुम इस सीखकी चाहे अवहेलना करो और चाहे उस पर चलो पर मैंने अपना कर्त्तव्य यही समझा कि मैं तुम्हें अपना विचार बता दूँ।

सत्य प्रकट करनेका साधन

आध्यात्मिकतासे शून्य स्त्री-पुरुषोंका सम्मिलन परमात्माका

सत्यको प्रकट करनेका साधन हैं। जो सबल है वे ब्रह्मचर्य पालन की ओर बढ़ते हैं, जो निर्बल हैं, वह सत्यकी किरणका दर्शन करते हैं।

शंका-समाधान

तुम्हारा पत्र मिला। मैं तुम्हारी शंकाओंका समाधान करने की चेष्टा करूँगा, जो बहुधा हमारे हृदयमें उत्पन्न होती हैं और और बिना समाधान पाये रह जाती हैं।

बाइबिलमें लिखा है कि पति और पत्नी दो नहीं एक ही प्राणी हैं। यह सत्य है, इसलिए नहीं कि ईश्वर-वाणी है, बल्कि इसलिए कि यह अनुभव सिद्ध है। जब स्त्री-पुरुषका संयोग होता है और फलस्वरूप संतान पैदा होती है, तब दोनों रहस्य-पूर्ण ढंगसे एकाकार होजाते हैं और कुछ बातोंमें वे दो प्राणी न होकर एक प्राणी होजाते हैं।

और इसलिए मेरा ख्याल है कि इन संयुक्त प्राणियोंको (अर्थात् दोनोंको) साथ-साथ संयम-पालनके लिए, विषय-भोग के त्यागकेलिए प्रयत्नशील होना चाहिए, दोनोंमें जो अधिक उन्नत हो, उसे सरल जीवन, अपने उदाहरण तथा उपदेश द्वारा दूसरेको इस दिशामें प्रेरित करनेका प्रयत्न करना चाहिए। पर जब तक दोनोंकी समान दिशा न होजाय, उन्हें संयुक्त रूपसे अपने पापोंका बोझ ढोते रहना चाहिए।

वासनाके उद्रेकमें हम बहुधा ऐसे काम कर बैठते हैं, जिनसे हमारी अन्तरात्मा घृणा करती है। इसी प्रकार संयुक्त जीवनमें दांपत्य-जीवन भी अपनेको अलग प्राणी न मानते हुए, हमें कभी-कभी ऐसे काम करने पड़ते हैं, जिनसे हमारी अपनी अन्तरात्मा घृणा करती है। कहनेका मतलब यह है कि एकाकी जीवनकी भांति विवाहित जीवनमेंभी प्रलोभनोंमें पड़ना पाप मानना चाहिए और उनके विरुद्ध संघर्ष करना चाहिए।

तुम्हारा यह कहना सही है कि मनुष्य परमात्माकी प्रतिमा है और उसे पापाचरणसे अपना शरीर-रूपी मन्दिर दूषित नहीं करना चाहिए, पर यह बात बाल-बच्चेवाले गृहस्थ पर लागू नहीं होती। संतानोत्पत्ति और उसके पालन-पोषणसे पापका बोझ बहुत कुछ हलका होजाता है, इसके अलावा गर्भावस्था और शिशु-संवर्द्धनके समय दीर्घकालके लिए पापसे मुक्ति मिल जाती है।

बच्चे पैदा करना अच्छा काम है, या बुरा, यह तर्क करना हमारा काम नहीं है। ईश्वरने पवित्रता भंगके पापको धोनेके लिए यह उपाय निकाला है और भला-बुरा वह जानता है।

यदि मेरी बात अप्रिय लगे तो क्षमा करना, पर मैं कहूँगा कि तुमने जो यह लिखा है कि संतानोत्पत्तिसे मनुष्यकी घबड़ाहट अधिकाधिक बढ़ती जाती है, उससे तुम्हारी निष्ठुर अहंवृत्ति प्रकट होती है। तुम संसारमें आनंद-मंगल मनानेके लिए नहीं बल्कि अपने नियत कर्त्तव्यको पूरा करनेके लिए आई हो। अपना आत्म-कल्याण करना तुम्हारा कर्त्तव्य है ही, इसके अलावा तुम्हारा कर्त्तव्य, यदि तुम पवित्रतामें, अपने पतिसे आगे हो, तो उसे भी उस दिशामें आगे बढ़ाना है। तुम्हारा कर्त्तव्य है कि तुम स्वयं यदि नियत-कार्य पूर्ण न कर सको तो संसारको ऐसे प्राणी दो जो उस कार्य को पूरा कर सकें।

दूसरे, दंपतिमें जो संबंध होते हैं, उसमें दोनोंका योग होता है। यदि पति-पत्नीमेंसे एकमें अधिक वासना है तो दूसरा चाहे यह भले ही समझे कि वह पूर्ण रूपसे पवित्र है, पर यह सही नहीं है।

मैं समझता हूं कि तुम्हारे संबंधमें भी यही बात लागू होती है। दूसरेके पापके आगे तुम्हें अपना पाप दिखाई नहीं पड़ता। यदि तुम पूर्ण रूपसे पवित्र होतीं तो तुम्हारा पति कहां अपनी

वासना-तृप्ति करता है, इसके प्रति तुम उदासीन होतीं—अर्थात तुम उससे ईर्ष्या न करतीं, तुम उसके पतन पर केवल दया करतीं, पर ऐसी बात नहीं है।

तुम क्या करो, इस संबंधमें यदि तुम मेरी व्यावहारिक सलाह चाहती हो तो मैं कहूंगा कि जिस समय तुम्हारे पतिमें तुम्हारे प्रति निर्मल प्रेमका प्राबल्य हो, तुम उसे बतादो कि तुम्हें विषय संबंधसे कितनी यातना, कितना दुख होता है और तुम किस प्रकार इससे छुटकारा पानेके लिए तड़प रही हो। यदि वह तुमसे इस बात पर सहमत न हो (जैसा कि तुम लिखती हो) कि पवित्रता अच्छी चीज है और वह तुमसे आग्रह करे तो उसके आगे सिर झुकाओ और जब बच्चे हों तो अपने पतिसे प्रार्थना करो कि वह गर्भावस्था और शिशु-संवर्द्धनके कालमें तुमसे दूर रहे। इसके बादभी यदि आवश्यकता पड़ जाय तो उसकी इच्छा पूरी करो और इसका फल क्या होगा, इसकी चिंता मत करो।

इससे तुम्हारा, तुम्हारे पतिका और तुम्हारे बच्चों का कल्याण ही होगा। क्योंकि ऐसा करने पर तुम अकेले अपने ही सुख और शांतिकी साधना नहीं करोगी, बल्कि परमात्माकी इच्छा भी पूरी करोगी।

यदि मैंने कुछ गलत कहा हो तो मुझे क्षमा करना। परमात्माको साक्षी रखकर, मैंने वही लिखनेका प्रयत्न किया है जो इस विषयमें मैंने स्वयं अनुभव और चिंतन किया है।

गुत्थी सुलझानेका उपाय

पति और पत्नीके बीच यदि कोई गांठ पड़ जाय तो वह विनम्रतासे ही दूर होसकती है, जैसे सीते वक्त तागेमें गुत्थी पड़ जाने पर, धैर्य पूर्वक प्रत्येक गुत्थीका अनुशीलन करने पर ही वह गुत्थी सुलझती है।

सब समान रूपसे दुखी

......मालूम पड़ता है कि वह अपने विवाहित जीवनसे असंतुष्ट है। वह अपने विवाह-कर्म पर पछताता है, सोचता है-हे ईश्वर यदि विवाह न करता तो अच्छा था। विश्वास करो, सुख बाहरी अवस्थाओंपर निर्भर नहीं करता। एक राक्षसकी शादी एक देवीसे हो जाती है, एक दिव्य पुरुषकी शादी राक्षसीसे हो जाती है, दोनों ही अपने विवाहित जीवनसे असंतुष्ट होते हैं। अधिकांश व्यक्ति, अधिकांश नहीं, सभी व्यक्ति, अपने विवाहसे असंतुष्ट रहते हैं। सभी सोचते हैं कि हमसे दुखी कोई न होगा। अतः सभीकी स्थिति समान है।

स्त्रीको भोग-वस्तु न मानो

यदि तू स्त्रीको, चाहे वह तेरी पत्नी क्यों न हो, भोग-वस्तु मानता है तो तू व्यभिचार करता है। अपने श्रमका पसीना बहाकर जीवनयापन करने वालोंकेलिए विवाहका उद्देश्य, सुखोपभोग नहीं, एक सहायक, एक उत्तराधिकारी प्राप्त करना होता है। परंतु वैभवकी गोदमें लोटनेवालोंके लिए विवाह दुराचार है।

अनाथ बच्चे

बागवानकी स्त्रीके बच्चा हुआ है। बूढ़ी दाई फिर आयी और बच्चेको ले गई, ईश्वर जाने कहां।

सबको बड़ा क्रोध हो रहा है। यदि संतति-निरोधके उपायोंका अवलंबन किया जाय तो चिंता नहीं, पर इसे धिक्कारनेके लिए तो शब्द ढूंढे नहीं मिलते।

आज मालूम हुआ कि बूढ़ी दाई बच्चेको लौटा लाई है। रास्तेमें उसे अन्य दाइयां मिलीं, जो इसी प्रकार बच्चे लिये जा रही थीं। एक बच्चेके मुंहमें स्तन बहुत ज्यादा दे दिया गया। बच्चेने जैसे ही स्तन मुंहमें दबाया वह उसके गलेमें चला गया

और वह दम घुटकर मर गया। मास्कोके नाजायज बच्चोंके अनाथलयमें एक दिनमें ऐसे पच्चीस बच्चे लेजाय गए थे। उनमेंसे ६ बच्चे लौटा दिये गए जो या तो नाजायज न थे या बीमार थे।

'एन'ने आज सुबह बागवानकी स्त्रीको फटकारा। उसने अपने पतिकी वकालत करते हुए कहा कि ऐसी गरीबी तथा अनिश्चित अवस्था में वह बच्चेको पाल नहीं सकती, इसके अलावा उसके दूध नहीं होता। एक शब्दमें बच्चे उसके लिए असुविधाजनक हैं।

इससे पहले मैं तीन अनाथ बच्चोंको पालनेमें झुला रहा था। बच्चोंकी पैदायश बेहद बढ़ गई है। वे बड़े होने पर शराबखोर, सिफलिससे पीड़ित होने तथा जंगली बन जानेकेलिए पैदा होते हैं।

लोग एक तरफ तो मनुष्यों और बच्चोंकी जान बचाने और दूसरी तरफ उनका नाश करनेके उपाय करते हैं। पर जंगली पशुओंको पालन ही क्यों किया जाय? इससे लाभ क्या?

पर उन्हें मारना न चाहिए और न उनका पालन बंद कर देना चाहिए, बल्कि उन्हें जंगली पशसे मनुष्य बनानेमें सारी शक्ति लगा देनी चाहिए, इसीसे कल्याण होगा। और यह बातोंसे नहीं, बल्कि स्वयं उदाहरण प्रस्तुत करके ही हो सकता है।

पाप-मोचनके उपाय

यदि उनका पतन हो गया है तो उन्हें जानना चाहिए कि उनके पाप मोचन के ये ही उपाय हैं—(१) वासनाके जाल से अपनेको निकालें, तथा (२) बच्चोंको शिक्षा देकर उन्हें ईश्वरका सच्चा सेवक बनावें।

नव-दम्पतिको सीख

प्रिय 'एम' और 'एन' तुम्हारे विवाहसे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। ईश्वर तुम्हें सुख-शांति और प्रेम प्रदान करे, इससे अधिककी तुम्हें आवश्यकता नहीं।......पर प्रिय मित्रो, मुझे क्षमा करना, मैं इतना जरूर कहूंगा—तुम दोनों सावधान रहो, अपने पारस्परिक

सम्बन्धोंमें चिड़चिड़ापन और दुरावको कभी मत आने देना। एक शरीर और एक प्राण होना सरल कार्य नहीं है। इसके लिए बहुत प्रयत्न करना पड़ता है। पर पुरस्कार भी उतना ही बड़ा मिलता है। इसका उपाय यदि पूछो तो मैं एक ही उपाय जानता हूँ। विषय-वासनाके बहावमें कभी इतने मत बह जाओ कि व्यक्तिके प्रति जो प्रेम और संमान प्रदर्शित करना चाहिए, उसे भूल जाओ। पति और पत्नीका सम्बन्ध रखो, पर एक अजनबी, एक 'पड़ोसी'के प्रति जैसा बर्ताव रहता है, उसे आपसमें बनाये रखनेकी सदा चेष्टा करे, यह सम्बन्ध प्रमुख रहे।

आपसमें झगड़े का कारण

एक दूसरेके प्रति आसक्ति न बढ़ाओ, बल्कि आपसमें कटुता न उत्पन्न होने देनेके लिए अपनी सारी शक्ति सावधान रहने, अधिक संवेदनशील बननेमें लगाओ। आपसमें झगड़ना बड़ी भयंकर आदत है। पति-पत्नीमें इतनी घनिष्टता होती है, इतने प्रकारके संबंध होते हैं कि हम उनके प्रति सजग रहना छोड़ देते हैं, जैसे हम अपने शरीरके बारेमें सजग रहना छोड़ देते हैं। और इसीसे सब खराबी पैदा होती है।

दम्पतिमें मेल कैसे रहे

उपन्यासोंमें दंपति-सुखका जैसा वर्णन मिलता है, अथवा मनुष्य जैसी कामना करता है उसके अनुसार दंपतिके सुखी होनेकेलिए आवश्यक है कि दोनोंका पूरा मेल हो। मेल तभी होसकता है, जब संसार जीवनके ध्येय और विशेष रीतिसे बच्चोंके संबंधमें पति-पत्नीके विचार एक हों। पर पति-पत्नीकी रुचि और संस्कृति बिल्कुल एक समान होना असंभव है, एक ही पेड़की दो पत्तियां समान नहीं होतीं, अतः मेल (और सुख) तभी हो सकता है जब दोनोंमें से एक अपने विचार दूसरेके अधीन कर दे।

यही मुख्य कठिनाई है। दोनोंमें जो अधिक ज्ञानवान होगा, वह कोशिश करने पर भी अपनेको दूसरेके अधीन नहीं कर सकेगा। मेल रखनेके लिए वह खाना-पीना और सोना छोड़ सकता है, वह बागवानी कर सकता है, पर जिसे वह पाप मानता है, अनुचित मानता है, अधर्म मानता है, वह कार्य नहीं कर सकता। पति-पत्नी अपने दिलमें भले ही समझते हों कि हमारा सुख हमारे मेल-मिलाप पर निर्भर है, बच्चोंको यथारीति शिक्षा देनेके लिए हमारा मेल-मिलाप आवश्यक है, पर पत्नी कभी अपने पतिको शराबखोरी और जुआखोरी की अनुमति नहीं दे सकती और पति कभी अपनी पत्नीको अनुमति नहीं दे सकता कि पत्नी नाच-गानमें मस्त रहे और बच्चे वाहियात बात सीखें।

मेल-मिलापके लिये, सुख-शांति और जीवन-कल्याणके लिए (जो प्रेम और एकताका दूसरा रूप है), यह आवश्यक है कि दोनोंमें जो अपनेको (विद्या-बुद्धिमें) छोटा समझता हो, वह न केवल घरेलू मामलोंमें, खाने-पीने, पहनने, रहने आदिके मामलों-में, बल्कि जीवनका क्या उद्देश्य हो, जीवन किस तरह व्यतीत किया जाय, इन सब बातोंमें भी अपनेको (विद्या-बुद्धिमें) अपनेसे बड़ेके अधीन कर दो।

पति-पत्नी, बच्चे और साथमें रहने वाले सब व्यक्तियोंके सुख-शांति तथा कल्याणके लिए आपसमें मेल परमावश्यक है। पति-पत्नीकी अनबन, उनकी कलह और उनके झगड़े, न केवल उनके लिए, बल्कि उनके बच्चोंके लिए भी दुखदायी होते हैं, इनसे जीवन नरक बन जाता है। इनसे बचनेके लिए जरूरी है कि दोनोंमें एक अपनेको दूसरेके अधीन करदे।

मेरा तो ख्याल है कि पति-पत्नीमेंसे एक जब अनुभव करता है कि दूसरा मुझसे अधिक ऊंचे स्तर पर है, वह साधु प्रकृतिका

है तो उसे अपने को उसके अधीन कर देनेमें आनंद मिलता है।

मानवताकी सेवा और परिवारकी सेवा

पति-पत्नीमें मेल-मिलापके लिए यह जरूरी है कि यदि संसार तथा जीवनके संबंधमें उनके विचार एक न हों तो दोनोंमें जो कम विचारशील हो, वह अपनेको अधिक विचारशील के अधीन कर दे।

मनुष्यको चाहिए कि वह मानवता और अपने परिवारकी सेवाको एकाकार करदे। अपने परिवारकी सेवा, परिवारके लोगों-की शिक्षा, बच्चोंकी शिक्षाको ही समस्त मानव-जातिकी सेवाका साधन बनाले। धर्म-विवाह जो संतानोत्पत्तिके रूपमें फलीभूत होता है, अपरोक्ष रूपमें ईश्वरसेवा ही है, माता-पिता अपने बच्चोंके लिए ईश्वरकी सेवा करते हैं। इसीलिए विवाहसे हमें सुख-शांति मिलती है। उसके लिए हम अपना कार्य दूसरों पर सौंप देते हैं। 'यदि मैंने अपना समस्त कर्त्तव्य पूरा नहीं किया तो मेरे बच्चे मेरा स्थान लेंगे और उसे पूरा करेंगे।'

पर बच्चे ऐसे होने चाहिएं कि वे कार्य पूरा कर सकें। उन्हें ऐसी शिक्षा देनी चाहिए कि वे ईश्वरके कार्यके बाधक नहीं, साधक बनें। यदि मैं आदर्श सिद्ध न कर सकूं, तो मुझे शक्ति भर प्रयत्न करना चाहिए कि मेरे बच्चे सिद्ध कर सकें। इस रीतिसे संपूर्ण शिक्षा-क्रम बन जाता है, शिक्षा धर्म सम्मत होजाती है। इस रीतिसे मनुष्य अपने परिवारकी सेवाको मनुष्य-जाति की सेवासे एकाकार कर देनेके योग्य बन जाता है।

नवीन शिशुके जन्मका रहस्य

मैं नवजात इवान[1]का स्वागत करता हूं। वह कहांसे आया

१—अपने एक मित्रके परिवारमें बालकका जन्म होनेकी ओर संकेत है।

है ? क्यों आया है ? कहाँ आया है ? वह कौन है ? जो लोग विज्ञानके उत्तरसे संतुष्ट होजाते हैं, उनके लिए ठीक है । पर जो लोग विज्ञानके उत्तरसे संतुष्ट नहीं होते, वे विश्वास करते हैं कि नवीन शिशुका जन्म बहुत अर्थ-पूर्ण होता है, हम जितने ही अंशोंमें शिशुके प्रति अपना कर्तव्य पूरा करते हैं, यह अर्थ उतने ही अंशोंमें हमारी समझमें आता है।

स्त्री-परित्याग पाप है

...विवाहित पुरुषोंको या तो अपने बीवी-बच्चोंको छोड़ देना चाहिए , जिसकी सलाह नहीं दी जा सकती, या एक जगह पर बस जाना चाहिए। दर-दर भटकना स्त्रियोंके लिए बड़ा दुखदायी होता होगा, जो (मुझे क्षमा करें) ईश्वर-प्रेमसे नहीं, बल्कि पति-प्रेमसे खिंचकर पवित्र जीवन व्यतीत करती हैं (और यह उन बेचारी स्त्रियोंके लिए बड़ा कष्टदायी होता है) अतः मेरी समझमें उन पर दया करनी चाहिए पति-पत्नी एक जगह अपनी गृहस्थी जमा पाते हैं कि अचानक उन्हें घरबार उठाकर दूसरी जगह कूच करना पड़ता है। यह सब उनकी शक्तिके बाहर होता है और इससे बड़े परिश्रमसे तैयार की गई इमारत ढह जायगी। मैं जानता हूँ कि तुम कहोगे, ईसाका आदेश है कि मनुष्यको अपने परिवार के साथ नहीं रहना चाहिए, बल्कि अपने बीवी-बच्चोंको छोड़ देना चाहिए, परन्तु मेरा खयाल है कि ऐसा परस्पर अनुमतिसे करना चाहिए, और ईसाका इससे भी बड़ा आदेश है--'पति और पत्नी दो नहीं, एक शरीर हैं' तथा 'जिन्हें परमात्माने एक कर दिया है, उन्हें मनष्य जुदा-जुदा नहीं कर सकता।' तुम्हारे जैसे सुखी और स्वस्थ मनुष्यको शादी नहीं करनी चाहिए, पर शादी करने और बाल-बच्चे वाले होजानेके बाद, अपने किये पापका परिणाम भोगना चाहिए। मेरी समझमें पतियोंसे अपनी पत्नियोंको छोड़ देनेकी आज्ञा या सलाह देना महापाप है। यह सच है कि शुरूमें

यह ख्याल होता है कि स्त्री और बच्चोंको अलग रखकर परमात्माकी अधिक सेवाकी जा सकती है, पर यह भ्रम है। (यदि तुम पूर्णरूपसे पवित्र तथा निष्पाप हो तब तो तुम्हारे लिए ऐसा संभव है)। दूसरोंको अपनी स्त्री और बाल-बच्चे छोड़ देनेका उपदेश न देना चाहिए, क्योंकि इससे पाप करने वाले अर्थात् विवाह कर लेनेवाले लोगोंको अपनी स्थिति बड़ी निराशापूर्ण प्रतीत होगी। यह अच्छा नहीं होगा। मेरी समझमें पापी तथा निर्बल भी ईश्वरकी सेवा कर सकते हैं।

एक बार विवाहका पाप कर लेनेके बाद मनुष्यको ईसाई ढंगसे जीवन बिताते हुए, अपने पापका फल भोगना चाहिए। उसे एक दूसरा पाप करके अपनेको पहले पापसे मुक्त करनेकी चेष्टा न करनी चाहिए, बल्कि अपनी अवस्थामें संतुष्ट रह कर अपनी सारी शक्तिसे ईश्वरकी सेवा करनी चाहिए।

वंश-रक्षाकी चिंता छोड़ दो

हां, ईसाने परमात्माकी सेवाका जो आदर्श रखा है, उसमें जीवन तथा वंश-रक्षाकी चिंता त्याग देनेके लिए कहा गया है। अभी तक इन चिंताओंसे मुक्त रहनेका प्रयत्न करनेसे मनुष्य-जातिका नाश नहीं हुआ। आगे क्या होगा, मैं नहीं जानता।

स्त्री-पुरुषके संबंधमें गड़बड़ी

'अपने समयकी विचित्रताओंके संबंधमें मेरी कुछ कहनेकी इच्छा नहीं होती। परंतु सभी ईसाई देशोंमें, क्या गरीब, क्या अमीर, पति और पत्नी, स्त्री और पुरुषका संबंध कुछ विचित्र है। मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि स्त्रियोंके कारण, पति और पत्नीका संबंध बिगड़ गया है, वे पुरुषोंके साथ न केवल उद्धत, बल्कि घृणा-पूर्ण व्यवहार करती हैं। वे दिखा देना चाहती हैं कि वे पुरुषोंसे किसी बातमें कम नहीं हैं। उनमें नैतिक भावनाका

अभाव होता है, और यदि होता भी है तो मातृत्वकी भावना उसे दबा देती है।

मेरा ख्याल है कि स्त्री और पुरुष समान हैं, पर उनके विवाह कर लेने और माता बन जानेके बाद, स्वभावतया उनके कार्य-क्षेत्र बंट जाते हैं। मातृत्व भारमें स्त्रीकी इतनी शक्ति खर्च हो जाती है कि उसमें नैतिक पथ-प्रदर्शनकी शक्ति नहीं रह जाती, यह कार्य स्वभावतया पति पर आ पड़ता है। सृष्टिके आदिसे यह क्रम चलता आया है......।

पर आजकल यह स्वाभाविक क्रम गड़बड़ा गया है। कुछ तो इसलिए कि पुरुषोंने अपने अधिकारका दुरुपयोग किया उन्होंने बलपूर्वक स्त्रियोंको अपने पथ पर चलनेके लिए विवश किया, कुछ इसलिए कि स्त्रियोंने अब ईसाई धर्म छोड़ दिया है।...... स्त्रियोंने भयसे पुरुषोंकी आज्ञाओंका पालन करना छोड़ दिया है और अभी स्वेच्छासे पुरुषोंके मार्गदर्शनको कल्याणकारी समझकर उनका अनुकरण करना शुरू नहीं किया है। इससे समाजके सभी क्षेत्रोंमें गड़बड़ी दिखाई पड़ती है।

दोनों एक-दूसरेको नहीं समझते

स्त्रियां और पुरुषोंको मुख्यतया इसलिए दुखी देखा जाता है कि दोनों एक-दूसरेको समझते नहीं।

पुरुष यह नहीं समझ पाते कि स्त्रीकेलिए बच्चे कितने महत्वपूर्ण होते हैं और स्त्री यह नहीं समझ पाती कि पुरुष अपने सामाजिक और धार्मिक कर्तव्योंके पालनको कितना महत्व देता है।

स्त्रीकी समझ

पुरुप यद्यपि स्वयं बच्चे नहीं जनते, पर वे समझते हैं कि बच्चोंको पेटमें रखना और जन्म देना कितना कष्टदायी और

दुखदायी होता है। पर ऐसी बिरली स्त्रियां होंगी जो यह समझ सकें कि नये आध्यात्मिक जीवनको जन्म देना कितना कठिन और गुरुतर कार्य है। वे क्षण भरके लिए यह अनुभव करती हैं और तुरंत भूल जाती हैं। जैसे ही उनकी कोई अपनी बात उठती है, वह चाहे कोई घरेलू बात हो या पहनने-ओढ़नेकी, वे पुरुषोंके दृढ़ जीवन-सिद्धांतोंको भूल जाती हैं और अपने रुपये-पैसे, कपड़ेकी बातके आगे वे जीवन-सिद्धांत उन्हें अवास्तविक और हवाई मालूम पड़ने लगते हैं।

परिवार और पत्नी

मैं सोचता हूं कि पति और पत्नीमें कलहका प्रधान कारण पारिवारिक जीवन-क्रमके संबंधमें उनके भिन्न-भिन्न विचार होते हैं।

एक स्त्री कभी यह स्वीकार नहीं कर सकती कि उसका पति होशियार और व्यवहार चतुर है, क्योंकि यदि वह यह स्वीकार कर ले तो उसे पतिकी सभी बातें माननी पड़ें।

यदि मैं अब 'क्रूजर -सोनाटा' लिखता तो उसमें यह बात मुख्य रूपसे दिखाता।

शासन स्त्रियोंके हाथमें

अंततोगत्वा वही शासन करते हैं, जिन पर जोर-जबर्दस्ती की गई है, अर्थात् जिन्होंने अप्रतिरोधके नियमका पालन किया है। आज स्त्रियां अधिकारोंके लिए लड़ रही हैं, पर वे वास्तवमें शासन करती हैं, क्योंकि उनपर जोर-जबर्दस्ती की जाती रही है। संस्थाएं पुरुषोंके हाथमें हैं, पर लोकमत स्त्रियोंके हाथमें है। लोकमत कानूनों और फौजोंसे लाखों गुना अधिक शक्तिशाली होता है। लोकमत स्त्रियोंके हाथमें है, इसका सबूत यह है कि न केवल गृह-व्यवस्था, भोजन-व्यवस्था आदि स्त्रियोंके अधीन है, बल्कि धनका व्यय और अतः मानव-श्रमका नियंत्रण भी स्त्रियोंके

हाथमें है। कला-कृतियों और पुस्तकोंकी सफलता, शासकोंका चुनाव तक लोकमतके हाथ रहता है और लोकमत स्त्रियोंके हाथमें है।

किसीने कहा है कि स्त्रियोंको नहीं पुरुषोंको स्वाधीनता प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिए।

पति : अपनी पत्नीकी नजरोंमें

एक सुंदर स्त्री अपने मनमें कहती है—'मेरा पति चतुर है, विद्वान् है, यशस्वी है,धनवान है, महान है, नीतिवान है, पवित्र है, पर मेरे निकट मूर्ख, अज्ञानी, दरिद्र, क्षुद्र तथा अनीतिवान है—वह मेरे प्रलोभनमें आ जाता है. अतः उसकी विद्या, बुद्धि और सब कुछ वृथा है।' यह असंयम पत्नीको गिराता है, उसका नाश करता है।

जीवनकी व्यर्थताका कारण

हमारे जीवनकी व्यर्थताका कारण स्त्रीका हम पर हावी होना है, स्त्री हमारे असंयमके कारण हमपर हावी होती है, अतः जीवनकी व्यर्थताका कारण हमारा असंयम है।

'क्रूजर सोनाटा'की कहानी

कहानी (क्रूजर सोनाटा) लिखते समय मैंने बराबर उसमें निम्न नाटकीय स्थिति उत्पन्न करनेकी चेष्टा की—पति पत्नीकी विषय-लोलुपता बढ़ाता है। डाक्टर बच्चे न पैदा करनेका आदेश देते हैं। पत्नीमें लोलुपता भर गई है. फिर कलाकृतियां उसकी लोलुपता बढ़ाती हैं। वह कैसे अपनेको रोके ? पतिको जानना चाहिए कि उसीने उसका पतन किया है। जिस समय वह उससे घृणा करने लगा, वह उसका नाश कर चुका था। इसके बाद तो वह बहाना ढूंढ़ता रहा और वह उसे मिल गया।

घरेलू काम

यदि प्रश्न यह है कि पति अपने बच्चोंके पालन-पोषण तथा

उनकी शिक्षा आदिके भारसे मुक्त होना चाहता है, यदि वह बच्चोंको सुलाने, नहलाने, कपड़े पहनाने, उनका और दूसरोंका भोजन बनाने, कपड़े सीने आदि कार्यों से मुक्त होना चाहता है तो अत्यन्त अनुचित, निर्दयनापूर्ण और अन्याय है।

आज भी बच्चोंको जन्म देने और उनका पालन करने का अधिकांश भार स्त्री पर पड़ता है, इसलिए यदि पति अवकाशके समय अन्य कार्योंका भार अपने ऊपर ले ले तो वह अस्वाभाविक न होगा। यदि हमारे समाजमें सारा कार्यभार निर्बल आज्ञाकारी स्त्री पर लाद देनेकी बर्बर प्रथा न चल गई होती तो ऐसा ही होता। यह बर्बर प्रथा हमारे समाजमें ऐसी घुस गई है कि हम यद्यपि स्त्रियोंको पुरुषोंके समान मानते हैं; उदार और सुसंस्कृत लोग कहते हैं कि स्त्रियोंको कालिजमें प्रोफेसर आदि होना चाहिए, यदि किसी महिलाका रूमाल गिर जाता है तो हम अपनी जानपर खेलकर उसे उठाने दौड़ते हैं, पर हम अपने बच्चोंके मल-मूत्रके कपड़े धोना, पत्नीके बीमार होने या थक जाने या बच्चेको खिलाने से ऊबकर कुछ पढ़ने या सोचनेके लिए अवकाश चाहने पर उनके कपड़ोंकी मरम्मत स्वयंकरना, अपना काम नहीं समझते।

इस संबंधमें लोकमत इतना पतित है कि इस प्रकारके काम हास्यास्पद माने जायंगे, उन्हें करनेके लिए बड़े पुरुषार्थकी आवश्यकता है।

सो इस विषयमें मैं तुमसे पूरी तरह सहमत हूं, मैं तुम्हारा बड़ा आभारी हूं कि तुमने मुझे इस विषयको अपने निकट स्पष्ट करनेका मौका दिया।

लड़कियोंकी शिक्षा

स्त्री-स्वातंत्र्यका सच्चा अर्थ यह है—कोई काम स्त्रियोंका विशेष कार्य मत मानो, जिसे तुम्हें स्वयं करनेमें लज्जा आती हो, बल्कि अपनी सारी शक्तिसे उसकी सहायता करो, क्योंकि वह

अबला है, जितना हो सके उतना उसका कार्य हलका करने की कोशिश करो।

इसी प्रकार लड़कियोंकी शिक्षाके संबंधमें हमें यह ख्याल रखना चाहिए कि वे भविष्यमें माताएं बनेंगी और उन्हें अवकाश नहीं मिलेगा, अतः उनके स्कूल ऐसे होने चाहिएं, जहां वे पहले-से इसके लिए शक्ति तथा ज्ञान अर्जित कर सकें।

भयकर बुराई

यह सच है कि स्त्रियां और उनके कार्यके बारेमें हमारे समाज में बहुतसी हानिकारक तथा बुरी धारणाएं प्रचलित होगई हैं और हमें उनके खिलाफ अपनी आवाज उठानी चाहिए। परन्तु मेरा समझना जो समाज स्त्रियोंके लिए पुस्तकालय और संस्थाएं खोलता है, वह इसके लिए झगड़ न सकेगा।

स्त्रियोंको कम वेतन मिलता है, पुरुषोंको अधिक,इससे मुझे गुस्सा नहीं आता, क्योंकि मजूरी काम पर दी जाती है। पर मुझे गुस्सा इस पर आता है कि स्त्री बच्चेको कोखमें रखती है, उसे दूध पिलाकर उसका पोषण करती है और ऊपरसे खाना पकानेका बोझ भी उसके सिर पर डाल दिया जाता है—वह चूल्हेमें तपे, बर्तन मले; कपड़े धोये, घरका झाड़ू-बुहारू करे और फिर सीये-पिरोये। इतने कामोंका बोझ केवल स्त्रीपर ही क्यों डाल दिया जाता है। एक किसान, मजदूर या सरकारी मुलाजिम खुद तो बैठकर मजेसे धूम्रपान करता है और घर का सारा काम स्त्री-पर छोड़ देता है। भले ही वह गर्भवती हो या बीमार हो, पर उसे ही चूल्हेके सामने तपना पड़ता है, कपड़े धोने पड़ते हैं और रात भर बच्चेको रखना पड़ता है। यह सब उसे समाजमें प्रचलित इस कुधारणाके फलस्वरूप करना पड़ता है कि ये स्त्रियोंके काम हैं।

यह भयंकर बुराई है। इससे असहाय स्त्रियोंमें नाना रोग उत्पन्न होते हैं, उनकी तथा बच्चोंकी बुद्धि कुंठित होजाती है और

वे असमयमें बूढ़ी होजाती हैं तथा मर जाती हैं।

एक ही उपाय

स्त्रियां सदा से पुरुषोंका अधिकार मानती आई हैं। गैर-ईसाई देशोंमें भी ऐसा ही था। पुरुष शक्तिशाली होनेके कारण शासन करते थे। सारे संसारमें यही होता आया है और आज भी हजार पीछे ९९९ पुरुष ऐसा ही करते हैं। ईसाई धर्मका उदय हुआ और उसने मनुष्यकी पूर्णता पशुबलमें नहीं, प्रेममें मानी। इस प्रकार उसने तमाम गुलामों और स्त्रियोंको स्वाधीन बनाया। परंतु गुलामों और स्त्रियोंकी स्वाधीनता विपत्ति न बने, इसके लिए आवश्यक है कि वे ईसाई धर्म अंगीकार कर लें अर्थात् अपना जीवन ईश्वर तथा मनुष्य जातिकी सेवाके लिए अर्पित कर दें। पर गुलाम और स्त्रियां स्वाधीन तो हो गई हैं; पर उन्होंने ईसा-धर्म अंगीकार नहीं किया है। इसीलिए वे संसारके लिए भयानक बनी हुई हैं. वे संसारकी सारी विपत्तियोंकी जड़ हैं। तब क्या किया जाय? क्या उन्हें फिर गुलाम बना दिया जाय? पर यह असंभव है, क्योंकि ऐसा कोई करेगा नहीं। ईसाई दूसरेको गुलाम नहीं बना सकते और गैर-ईसाई गुलामीको कबूल नहीं करेंगे, वे लड़ेंगे। सच तो यह है कि वे आपसमें लड़ रहे हैं और ईसाइयोंको अपना गुलाम बना रहे हैं। तब क्या किया जाय? केवल एक ही उपाय है—उन्हें ईसाई धर्मकी ओर खींचा जाय उन्हें ईसाई धर्ममें दीक्षित किया जाय। और ऐसा अपना जीवन ईसाके बताये मार्ग पर ढाल कर किया जा सकता है।

अध:पतनकी ओर

जो स्त्रियां पुरुषोंका काम और पुरुषोंके समान स्वाधीनता मांगती हैं, वे नहीं जानतीं कि वे अज्ञात रूपसे स्वेच्छाचारिताकी

मांग कर रही हैं और फलतः वे परिवारके दायरेको तोड़कर अधःपतनकी ओर जा रही हैं, जबकि वे समझती हैं कि वे उन्नति कर रही हैं।

उलटी सीख

मैं अन्य बातोंके साथ स्त्रियों और विवाहके संबंधमें बहुत-कुछ सोचता रहा हूँ और अपने विचार प्रकट कर देना चाहता हूँ। निश्चय ही मैं छोटी-छोटी बातों (महिला विद्यापीठ आदि) के बारेमें नहीं, बल्कि स्त्रियोंके महत्कार्यके बारेमें सोचता रहा हूं। इस संबंधमें बहुतसी उलटी सीखें शिक्षित महिला-समाजमें दी जारही हैं। उदाहरणके लिए यह उपदेश दिया जारहा है कि स्त्रियोंको अपने बच्चोंको दूसरे बच्चोंसे अधिक प्यार न करना चाहिए। स्त्रियोंके विकास, पुरुषोंसे स्त्रियोंकी समानता आदिके संबंधमें बहुत-सी गोलमाल और भ्रमपूर्ण बातें प्रचारितकी जाती हैं, पर यह उपदेश सर्वत्र दिया जाता है कि स्त्रियोंको अपने बच्चेको दूसरोंके बच्चोंसे अधिक प्यार न करना चाहिए। यह इन सब उपदेशोंका सार कहा जा सकता है। पर यह उपदेश बिलकुल गलत है।

स्त्री-पुरुषके कर्त्तव्य

प्रत्येक स्त्री-पुरुषका कार्य मानव-जातिकी सेवा है। मैं समझता हूं कि सभी नीतिवान पुरुष इस कथनसे सहमत होंगे। इस कार्य-को पूरा करनेके स्त्रियों और पुरुषोंके साधन अलग-अलग हैं। पुरुष अपने शारीरिक, मानसिक तथा नीति-सम्मत कार्योंसे सेवा करता है। वह विविध रूपोंसे सेवा करता है। बच्चे पैदा करने और उन्हें पालनेके कामको छोड़कर, अन्य सभी कामोंको वह अपनी सेवाका क्षेत्र बना सकता है। स्त्री भी सब क्षेत्रोंमें सेवा कर सकती है, पर उसके शरीरकी बनावटने एक सेवा-कार्य विशेष रीतिसे उसके लिए नियत कर दिया है, जो पुरुष नहीं कर सकता।

मनुष्य जातिकी सेवा दो प्रकारसे की जा सकती है—एक तो मनुष्योंकी अधिक-से-अधिक भलाई करना, दूसरे मनुष्य-जातिको कायम रखना[1] पहला कार्य विशेष रीतिसे पुरुषोंके जिम्मे है, क्योंकि वे दूसरा कार्य नहीं कर सकते। स्त्रियोंके लिए विशेष रीतिसे दूसरा कार्य है, क्योंकि इसे वे ही कर सकती हैं। यह भेद-भाव भुलाया नहीं जा सका और न भुलाना चाहिए, इसे मिटानेकी कोशिश नहीं करनी चाहिए, जैसा कि कुछ लोग करते हैं, (यह पाप है अर्थात् गलत है) इस भेद-भावसे स्त्रियों और पुरुषोंके अलग-अलग कर्त्तव्य निर्धारित होते हैं, ये स्वाभाविक हैं, पुरुषोंके बनाये कृत्रिम नहीं हैं। इस भेद-भावसे स्त्रियों और पुरुषोंके गुण-दोषोंकी कसौटी निर्धारित होती है—यह कसौटी युगोंसे चली आयी है और आज भी कायम है और (जब तक मनुष्य विवेकशील प्राणी बना रहेगा) कायम रहेगी।

जो पुरुष अपना जीवन विविध पुरुषोचित कार्योंको करनेमें बिताते हैं और जो स्त्रियां अपना जीवन बच्चे पैदा करने और उनका पालन-पोषण करनेमें बिताती हैं, वेसदा अनुभव करेंगे कि उन्होंने अपना जीवन पुण्य कार्योंमें बिताया, और मनुष्य-समाज सदा उन्हें आदरकी दृष्टिसे देखेगा, क्योंकि उन्होंने अपने कर्त्त-

१—यहां पर यह संकेत कर देना आवश्यक है कि यह टाल्सटायके 'क्रूजर सोनाटाका परिशिष्ट' लिखनेसे पहलेका लिखा हुआ है। 'क्रूजर सोनाटाका परिशिष्ट' लिखनेके समय टाल्सटायके विचार और परिपक्व होगए थे और वे पूर्णब्रह्मचर्यको मानव-जीवनका आदर्श मानने लगे थे और मानव-जातिको कायम रखना जरूरी कार्य नहीं मानते थे। आगे भी कुछ ऐसे अवतरण हैं, जिनमें पूर्ण ब्रह्मचर्यके आदर्शसे मेल न खाने-वाले विचार आये हैं। इन्हें पढ़ते समय पाठक ध्यानमें रखें कि यह टाल्सटायके पहले विचार हैं।—अनु०

च्योंका पालन किया। पुरुषोंका कार्य बहुमुखी और विस्तृत है, स्त्रियोंका कार्य सीमित, पर गम्भीर है। इसलिए पुरुष एक, दस अथवा सौ कामोंमें गलतीभी करे तो वह बुरा नहीं माना जाता, क्योंकि उसने अन्य हजार काम ठीक किये। पर स्त्रियोंके इने-गिने कार्य हैं, इसलिए यदि वह इनमेंसे एक कार्यभी नहीं करती तो वह बुरी मानी जाती है। लोकमत सदासे ऐसा ही रहा है और रहेगा, क्योंकि यह एक तात्त्विक प्रश्न है। पुरुषको शरीर तथा बुद्धिसे ईश्वरकी सेवा करनी चाहिए, वह अनेक क्षेत्रोंसे अपने कर्त्तव्यकी पूर्ति कर सकता है। परन्तु स्त्रीके लिए ईश्वर-सेवा का एकमात्र बच्चोंका लालन-पालन है (क्योंकि और कोई यह सेवा-कार्य नहीं कर सकता)।

पुरुषको अपने कार्योंसे ईश्वर और मनुष्य जातिकी सेवा करनेका आदेश दिया गया है, पर स्त्रीको बच्चों द्वारा ही सेवा करनेके लिए आदेश दिया है। इसलिए स्त्रियोंका अपने बच्चोंको विशेष रीतिसे प्यार करना सर्वथा स्वाभाविक है। इसके खिलाफ जो दलीलें दी जाती हैं, वे व्यर्थकी हैं। माता सदा अपने बच्चोंको विशेष रीतिसे प्यार करेगी। माताका अपने बच्चोंको शैशवावस्थासे प्यार करना अहंवृत्तिका द्योतक नहीं है, जैसी कि उलटी सीख कुछ लोग देते हैं, यह प्यार वैसाही है, जैसे कोई कारीगर अपने हाथसे बनाये कार्यको प्यार करता है। यदि यह प्यार निकाल दिया जाय तो फिर उसके लिए काम करना असंभव हो जाय।

यदि मैं कोई जूता बना रहा हूं तो मैं उसे उसी प्रकार प्यार करूंगा, जिस प्रकार कोई माता अपने बच्चेको प्यार करती है। यदि कोई उस जूतेको नुकसान पहुंचाये तो मुझे क्लेश होगा। मेरा यह विशेष प्रेम तभी तक रहेगा, जब तक मैं उस कार्यको करता रहूँगा। जब मैं अपना कार्य पूरा कर लूंगा तो उसके प्रति मेरा

मोह बना रहेगा, एक क्षीण ममता। यही बात किसी माताके संबंधमें भी चरितार्थ होती है।

पुरुषको विविध कार्योंसे मनुष्य जातिकी सेवा करनेका आदेश दिया गया है और वह अपने इन कार्योंसे प्रेम करता है। स्त्रीको अपने बच्चोंसे सेवा करनेका आदेश दिया गया है और वे बच्चे जब तक ३ अथवा ७ अथवा १० वर्षके न हो जायं, तब तक उनका पालन-पोषण करते हुए, उसका उनसे प्रेम करना सर्वथा स्वाभाविक है।

मेरी समझमें इस तरह स्त्रियों और पुरुषोंकी पूर्णरूपसे समानता सिद्ध होती है, क्योंकि दोनों समान रूपसे ईश्वर तथा मनुष्य-जातिकी सेवा करते हैं, यद्यपि उनके कार्यक्षेत्र भिन्न-भिन्न हैं। दोनोंकी समानता इस बातसे भी सिद्ध है कि दोनोंका योग समान रूपसे महत्त्वपूर्ण है, एककी दूसरेके बिना कल्पना नहीं की जा सकती, दोनों एक दूसरेके पूरक हैं, तथा दोनोंको अपने-अपने कार्य संपन्न करनेके लिए सत्यका जानना जरूरी होता है और उसे जाने बिना कार्य मानव जातिके लिए लाभदायी होनेके बजाय हानिकारक होजाते हैं।

पुरुषको विविध कार्य करनेका आदेश दिया गया है, पर उसका सारा शारीरिक-श्रम (अन्न उत्पन्न करना अथवा तोपें बनाना) उसका मानसिक-कार्य (मनुष्योंकी भलाई करना अथवा रुपये गिनना) तथा उसका धार्मिक कार्य (मनुष्योंमें एकता स्थापित करना) तभी लाभदायी होता है, जब वह अनुभूत सत्यके आधार पर किया जाता है।

यही बात स्त्रियोंपर भी चरितार्थ होती है। उसका बच्चे पैदा करना तथा उनका पालन-पोषण करना मनुष्य जातिके लिए तभी लाभदायी होगा जब वह अपने सुखके लिए बच्चोंका पालन-पोषण नहीं करेगी, बल्कि वह उन्हें मानव-जातिका भावी-सेवक बनायेगी,

जब वह उन्हें सत्यकी शिक्षा देगी अर्थात् उन्हें यह सिखायेगी कि वे मनुष्यसे कम-से-कम लें और उसे अधिक-से-अधिक दें। मैं उस स्त्रीको आदर्श स्त्री कहूँगा जो जीवन-सिद्धांतोंको अच्छी तरह समझ लेनेके बाद अधिक-से-अधिक संख्यामें बच्चे पैदा कर तथा पाल-पोस कर उन्हें मानव-जातिकी सच्ची सेवा कर सकनेके योग्य बना देनेकी शिक्षा देती है। जीवन-सिद्धांतोंकी शिक्षा महिला विद्या-पीठोंमें अथवा आंख-कान बंद रखनेसे नहीं मिलती, वह हृदयका द्वार मुक्त-रूपसे खोल देने पर प्राप्त होती है।

अच्छा, जो निःसंतान हैं या अविवाहित हैं या विधवा होगई हैं, वे क्या-करें? उन्हें चाहिए कि वे पुरुषोंके विविध कार्योंमें हाथ बंटावें। प्रत्येक स्त्रीको बच्चे पैदा करनेके कर्तव्यको पूरा कर लेनेके बाद, शक्ति रहने पर अपने पतिके कार्योंमें हाथ बंटाना चाहिए और इस प्रकारकी सहायता बड़ी मूल्यवान होती है।

हानिकारक फैशन

स्त्रियोंकी अति प्रशंसा करना तथा यह कहना कि वे बुद्धिमें न केवल पुरुषोंके समान, बल्कि उनसे बढ़ी-चढ़ी होती हैं, एक बुरा तथा हानिकारक फैशन है।

इसमें संदेह नहीं कि स्त्रियोंके अधिकारों पर प्रतिबंध नहीं लगने चाहिएं, उनका आदर और प्रेम भी पुरुषोंके समान करना चाहिए तथा उनके अधिकार पुरुषोंके समान होने चाहिएं। परन्तु यह कहना कि साधारण स्त्रियोंमें भी पुरुषोंके समान आध्यात्मिक शक्ति होती है, स्त्रियोंसे भी उतनी ही आशा करना, जितनी आशा पुरुषोंसे की जाती है, अपनेको जान-बूझ कर धोखा देना होगा, स्त्रियोंको हानि पहुंचाना होगा।......इन असंभव बातोंकी आशा करके आप उनसे वे ही बातें चाहेंगे और उनके न मिलनेपर आप उनसे चिढ़ेंगे और उन्हें व्यर्थ दोष देंगे।

इसलिए स्त्रीको आध्यात्मिक दृष्टिसे कमजोर स्वीकार करना

उसके प्रति निर्दयता नहीं है, उसपर समताका आरोप करना निर्दयता है।

आध्यात्मिक दृष्टिसे कमजोर होनेसे मेरा आशय है कि वह अपने शरीर-को अपनी आत्माके अधीन उतनी मात्रामें नहीं रख पाती, वह बुद्धिमें उतनी अधिक श्रद्धा नहीं रखती, जो कि स्त्रियोंका स्वभाव है।

पारिवारिक जीवन

पारिवारिक जीवन तभी अच्छा हो सकता है, जब स्त्रियोंको यह विश्वास दिला दिया जाय कि उन्हें सदा पतिका अनुकरण करना चाहिए। मैंने लिखा है कि यह क्रम सृष्टिके आरंभ-कालसे चला आया है और बच्चोंके साथ पारिवारिक जीवनकी जर्जर नौका पर तभी भवसागरको पार किया जा सकता है जब पतवार एक व्यक्तिके हाथमें हो। और वह व्यक्ति पुरुष ही हो सकता है, क्योंकि उसे बच्चे पैदा करना और उन्हें पालना-पोसना नहीं पड़ता और वह अपनी स्त्रीकी अपेक्षा अधिक उत्तम रीतिसे पतवार खे सकता है।

'पर क्या स्त्रियां सदा पुरुषोंसे नीची होती हैं ?' नहीं। अविवाहित अवस्थामें वे समान होती हैं। 'पर इसके क्या मानी कि स्त्रियां आजकल केवल समानता ही नहीं, श्रेष्ठताका भी दावा करती हैं ?' इसके मानी यह हैं कि पारिवारिक जीवनमें विकास होरहा है और इसलिए पुरानी प्रथाएं छिन्न-भिन्न होरही हैं। स्त्री-पुरुषोंके सम्बन्धोंको नये रूप देनेकी आवश्यकता है, पुराना रूप नष्ट होरहा है।

नया रूप क्या होगा, कोई कह नहीं सकता, यद्यपि उसकी भिन्न-भिन्न रूपरेखा बनाई जारही है। संभव है भविष्यमें अधिक संख्यामें लोग ब्रह्मचर्य पालन करें, संभव है अस्थायी विवाह

प्रचलित हो जाय तो बच्चे पैदा हो जानेके बाद टूट जाय और स्त्री-पुरुष ब्रह्मचर्य पालनके लिए अलग-अलग रहने लगें। संभव है बच्चोंकी शिक्षाकी व्यवस्था समाज करने लगे। नये रूप क्या होंगे, कल्पना नहीं की जा सकती, पर यह निश्चित है कि नये रूप विकसित होरहे हैं। पुराने रूप तभी कायम रह सकते हैं, जब स्त्रियां पुरुषोंका अनुकरण करने लगें, जैसा कि सब जगह सदासे होता आया है और आज भी जहाँ सच्चा गार्हस्थ-सुख वर्त्तमान है, ऐसा ही होता है।

शुद्ध-प्रेम पर उपन्यास

कल मैं सेयनकीविजकी 'विदाउट डागमा' (रूढ़िरहित विचार) पुस्तक पढ़ रहा था। उसमें स्त्रीके प्रति प्रेमका बड़ा सूक्ष्म चित्रण है, वह फ्रांसीसियोंके वैषयितकापूर्ण, अंग्रेजोंके पाखण्ड-पूर्ण अथवा जर्मनोंके दम्भपूर्ण चित्रणसे कहीं अधिक सुन्दर है। उसे पढ़कर मेरे मनमें विचार उठा—क्या अच्छा हो कि पवित्र प्रेमका चित्रण करने वाला एक उपन्यास लिखा जाय...ऐसा प्रेम जो वैषयिकतामें नहीं उतर जाता, बल्कि वैषयिकताके विरुद्ध रक्षा-कवचका काम देता है। क्या वैषयिकतासे बचनेका एकमात्र यही उपाय है? हां, यही उपाय है। इसीके लिए स्त्री और पुरुषकी उत्पत्ति हुई है। पुरुष स्त्रीके निकट जाने पर ही अपना ब्रह्मचर्य खण्डित करता है, और उसीके साथ रहकर अपना ब्रह्मचर्य अखण्ड रख सकता है। जरूर इसे लिखना चाहिए......

मनुष्य और पशु

मनुष्य पशु होनेके नाते जीवन-संघर्षके नियम तथा वंश-रक्षा के हेतु विषय-संस्कारके आगे झुकता है। पर एक विवेकशील प्राणी होनेके नाते वह इसके विपरीत नियम पर चलता है, वह प्रतिद्वंद्वी तथा शत्रुसे संघर्ष नहीं करता, बल्कि उसके प्रति विनम्रता,

ज़ुद्रता तथा प्रेम प्रकट करता है, वह विषय-संस्कारोंके वश नहीं होता, बल्कि संयम पालन करता है।

मनुष्यका प्रथम कर्त्तव्य

मनुष्य-जातिका एक प्रधान कर्तव्य ब्रह्मचारिणी स्त्रियां तैयार करना है।

शैतानकी खाला

कथाओंमें वर्णित है कि स्त्रियां शैतानकी खाला होती हैं। सामान्य रूपसे उनमें बुद्धि नहीं होती, पर जब वे शैतानके वश होती हैं तो शैतान उन्हें अपनी बुद्धि दे देता है। तब वे नीच कार्योंको करनेमें कमालकी बुद्धि, दूरंदेशी तथा दृढ़ता दिखाती हैं। पर जब कोई नीच कार्य नहीं करना होता तो सीधी बात भी उनकी समझमें नहीं आती, वे अपनी नाकसे आगे नहीं देख पातीं, उनमें जरा भी धीरता या दृढ़ता नहीं रहती (केवल बच्चे पैदा करने तथा उनका पालन-पोषण करनेके कार्यको छोड़कर)।

पर यह सब गैर-ईसाई स्त्रियोंके लिए, कुलटाओंके लिए कहा गया है। स्त्रियोंको स्त्री-धर्मका गौरव समझानेकी कितनी आवश्यकता है। मेरीकी कथा निराधार नहीं है।

प्रत्येक लड़कीसे

स्त्री-धर्म सर्वश्रेष्ठ मानव-धर्म है जिसके बारेमें मैं लिख चुका हूं। गृहस्थ-जीवनकी ब्रह्मचर्य-जीवनसे तुलना करना ग्राम्य-जीवनकी नागरिक-जीवनसे तुलना करनेके समान है। खाली गृहस्थ जीवन अथवा ब्रह्मचर्य-जीवनका मनुष्यके चित्त पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ब्रह्मचर्य जीवन पवित्र भी हो सकता है और पापमय भी; इसी प्रकार गृहस्थ-जीवन भी पापमय हो सकता है और पवित्र भी।

प्रत्येक लड़कीको और विशेष रीतिसे तुझे, क्योंकि तू आध्यात्मिकताकी ओर बढ़ रही है, मैं सलाह दूँगा कि समाजमें जो भी

चीजें विवाहकी आवश्यकता तथा उपादेयता बताती हैं, उनसे घृणा कर। इस प्रकारके उपन्यास, संगीत, फजूलकी गपशप, नाच, केल-कूद, ताश, यहां तक कि तड़क-भड़ककी पोशाकसे भी दूर रह। शामको बातूनी लोगोंके साथ बैठकर ताश खेलनेसे अपनी कमोज सीना अधिक आनंदप्रद होता है (और अपनी आत्माके लिए कितना कल्याणकर होता है) समाजमें प्रचलित यह विचार कि किसी युवतीके लिए अविवाहित रहना, कुमारी रहना बड़ा अपमानजनक है, नितांत मिथ्या है, सत्यसे कोसों दूर है। ब्रह्मचारिणी रहकर मनुष्य जातिकी सेवा करना, दीन-दुखियोंकी सहायता करना, किसी विवाहित जीवनसे कहीं अधिक श्रेयस्कर है। मैथ्यूके प्रवचनके अध्याय १६ में लिखा है—'सब मनुष्य यह शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकते, इसे वे ही कर सकते हैं जिन्हें यह दी गई है।' सब युगोंमें संसारके सभी स्त्री-पुरुषोंने इस प्रश्नको इसी दृष्टिसे देखा है और उन्होंने सदा ईश्वर-सेवाके निमित्त ब्रह्मचर्य पालन करने वाले स्त्री-पुरुषोंका सदा बड़ा आदर किया है। हमारा समाज ऐसे स्त्री-पुरुषों पर हँसता है। पर वह तो, जो लोग ईश्वर-सेवाके निमित्त दरिद्रताका वरण कर लेते हैं, जो लोग धनके पीछे दीवाने नहीं होते, उन पर भी हँसता है। मैं प्रत्येक लड़की को, और तुझे भी सलाह दूंगा कि अपना आदर्श ईश्वरकी सच्ची सेवा बना; अर्थात् अपने भीतर आध्यात्मिकताकी चिनगारी प्रज्वलित रख और यदि विवाह ईश्वर-सेवामें बाधक मालूम पड़े तो ब्रह्मचारिणी रह। यदि तू कभी किसी पुरुषके प्रेममें पड़कर विवाह कर ले, तो पत्नी तथा माता बननेपर प्रसन्न मत हो, गर्व मत कर, बल्कि जीवनके अपने मुख्य ध्येय—ईश्वर सेवा—को सामने रख और यह कोशिश कर कि परिवारके प्रति तेरा विशिष्ट प्रेम ईश्वर सेवामें बाधक न बने।

नवयुवकों को सीख

......तुम्हारी उम्र तथा परिस्थितिके सभी युवकोंके लिए बड़ा खतरा होता है। जिस अवस्थामें तुम्हारी आदतें बनती हैं, जो बादमें वज्र लेपके समान होजाती हैं उस अवस्थामें तुम्हारे ऊपर कोई नैतिक या धार्मिक नियंत्रण नहीं रहता। उस समय तो तुम्हें बस, खाली सबक घुटाया जाता है, जिससे तुम येन-केन प्रकारेण भागनेकी कोशिश करते हो। तुम्हारे चारों ओर प्रलोभनों का बाजार लगा रहता है और उसके रास्ते तुम्हारे लिए खुले होते हैं। तुम्हें यह परिस्थिति बिलकुल स्वाभाविक लगती है और क्यों न लगे? तुम्हारा इसमें जरा भी दोष नहीं कि तुम्हें यह परिस्थिति स्वाभाविक लगती है, क्योंकि तुम और तुम्हारे अन्य साथी इसी परिस्थितिमें बड़े हुए हैं। फिर भी यह परिस्थिति बड़ी अस्वाभाविक और खतरनाक होती है। खतरनाक इसलिए होती है कि यदि नवयुवक इच्छाओंकी तृप्ति अपने जीवनका ध्येय बना लेते हैं तो आगे उन्हें बड़े दुःख उठाने पड़ते हैं। अच्छा खाने-पीने, पहनने आदिसे जो आदतें बन जाती हैं, वे दिन-पर-दिन बढ़ती ही जाती हैं और नई-नई इच्छाओंको तृप्त करनेके लिए नये-नये साधन खोजने पड़ते हैं, क्योंकि पुरानी इच्छाओंको तृप्त करनेमें थोड़े दिनोंके बाद कोई आनंद नहीं मिलता।

सब इच्छाओंमें विषयेच्छा सबसे दुखदायी होती है। यह प्रणय-व्यापार, हस्तमैथुन और शीघ्र ही स्त्री संभोगकी ओर ले जाती है। स्त्री-सुखका अनुभव कर लेनेके बाद मनुष्य मद्यपान, धूम्रपान, उत्तेजक संगीत आदि कृत्रिम उपायोंसे आनंदोपभोगमें वृद्धि करनेका प्रयत्न करता है।

क्या गरीब, क्या अमीर, सभी युवक सामान्य रूपसे (कुछको छोड़कर) इस पथ पर चलते हैं। यदि वे समय रहते संभल गए तो चुटैले होकर पवित्र जीवनकी ओर बढ़ते हैं, पर यदि न संभले

तो बरबाद होजाते हैं। मैं अपनी आँखोंसे सैकड़ों युवकोंको बरबाद होते देख चुका हूँ।

तुम्हारे लिए छुटकारा पानेका एक उपाय है—जरा ठहरकर अपने जीवनपर विचार करो, अपने चारों ओर गौरसे देखो और एक आदर्श नियत कर लो (अर्थात् यह निश्चय करलो कि तुम क्या होना चाहते हो) और उसीको प्राप्त करनेका प्रयत्न करो।

प्रणय-पिपासा और विवाह

मेरा सदासे यह विचार रहा है कि किसी व्यक्तिके आचार-नीतिके विषयमें गंभीर होनेका सबसे बढ़िया प्रमाण यह है कि वह कहां तक संयम पालनमें दृढ़ है।

'एन' जिस जालमें फंस गया, वह एक सत्य और शीलस्व-भाव वाले मनुष्यके लिए सर्वथा स्वाभाविक है। उसने आपसमें कायम होगए सम्बन्धोंको छिपाना नहीं चाहा, बल्कि उन्हें स्वी-कार करके एक आध्यात्मिक रूप दे दिया।

मैं उसका विचार भलीभांति समझता हूं, प्रेममें पड़नेसे जो मानसिक उथल-पुथल पैदा होती है, उसका उपयोग ईश्वरकी सेवामें किया जाय। ऐसा संभव है। मैं समझता हूं कि जो लोग ऐसी स्थितिमें पड़ जाते हैं, वे अपनी शक्ति इस दिशामें लगाकर उसे बढ़ा सकते हैं, तथा असीम लाभ उठा सकते हैं। मैं स्वयं ऐसे कई उदाहरणोंको जानता हूं। पर इस मामलेमें एक खतरा देखता हूँ, यदि व्यक्तिगत भावना खत्म होगई (जो बहुत संभव है) तो शायद न केवल सारी स्फूर्ति गायब होजाय, बल्कि शायद ईश्वर-सेवाके कार्योंमें सारी दिलचस्पी भी जाती रहे। मैं ऐसे कई उदाहरण देख चुका हूं। इससे यह सिद्ध होता है कि ईश्वरकी सेवा बाहरी अवस्थाओं पर निर्भर नहीं करनी चाहिए, वह अपनी आत्मप्रेरणासे करनी चाहिए, उसकी आवश्यकता स्वयं-सिद्ध होनी चाहिए, वह स्वयं आनंद देने वाली होनी चाहिए।

इसी प्रकार प्रशंसा करके ईश्वरकी सेवाके लिए अधिक स्फूर्ति प्रदान की जा सकती है, पर यहां वही खतरा है, कहीं प्रशंसा न मिलने पर ईश्वर-सेवाके प्रति उदासीनता न आजाय।

यह सब हमने स्वयं अनुभव किया है और हमने लिखा भी है। मैंने पिछले पत्रमें 'एन'से अपने सहमत होनेकी जो बात लिखी थी, उसमें मैं एक बात और जोड़ देना चाहता हूं। मैंने लिखा था कि यदि स्त्री और पुरुष ईश्वर तथा मनुष्य जातिकी सेवा करनेके उद्देश्यसे विवाह करें तो वह शुभ होता है। वह शुभ इसलिए नहीं होता कि वैवाहिक संबंधसे सेवाकी शक्ति बढ़ जाती है, बल्कि शुभ इसलिए होता है, कुछ लोग प्रणयके लिए विकल रहते हैं, और विवाह होनेसे वह विकलता दूर होजाती है, जो संपूर्ण शक्तिको सेवा-कार्यमें लगा देनेमें बाधा डालती रहती है। इसलिए यद्यपि पूर्ण ब्रह्मचर्य सेवा-कार्यमें सबसे अधिक सहायक होता है, पर कुछ लोगके लिए विवाह, उनकी विकलता शांत करके, उनकी सेवा-शक्ति बढ़ाता है, पर इस संबंधमें मैं एक महत्त्वपूर्ण बात और कह देना चाहता हूँ। वह यह कि पुरुषोंको यह समझ लेना चाहिए कि विवाहसे पूर्व तथा बादमें जो प्रेम-पिपासा अथवा प्रणय-लालसा और उसके साथ मानसिक उथल-पुथल पैदा होती है, वह आनंदोपभोग या कलात्मक सृष्टिके लिए नहीं (जैसा बहुत लोग सोचते हैं) या ईश्वर-सेवाकी शक्ति बढ़ानेके लिए (जैसा 'एन' का ख्याल है) नहीं, बल्कि वह संतानोत्पत्ति करके काम-विकारसे मुक्ति पानेके लिए शारीरिक सम्मिलनके उद्देश्यसे पैदा होती है। इस लालसाको किसी और दिशामें लगानेसे जीवन-पथ सरल नहीं होगा, बल्कि कठिनाइयाँ और अधिक वह बढ़ जायँगी।

इसलिए मैं तुमसे इस बातमें पूरी तरह सहमत हूँ कि यह बहुत खतरनाक जाल है और इससे बहुत अधिक सावधान रहना

चाहिए। कुछ लोग कहते हैं—'जिस प्रकार पुरुषोंसे मैत्री रखी जाती है, उसी प्रकार स्त्रियोंसे मैत्री क्यों नहीं रखी जा सकती ?' मैत्री रखी तो जा सकती है, और यह अच्छा है, पर 'एन' जैसे सत्य और शील स्वभाव वाले व्यक्तिका कहना है कि स्त्रियोंसे संबंध कुछ विचित्र होता है। यदि कोई पुरुष अपनेको धोखा नहीं दे रहा है, तो उसकी दृष्टिमें तत्काल यह बात आ जायगी कि पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंसे संबंध सरलतासे जुड़ जाता है और उसे बढ़ानेमें प्रयासकी आवश्यकता नहीं होती। इसका कारण होना चाहिए ? और एक नीतिवान पुरुषकी दृष्टिमें जैसे ही यह बात आयगी, वह समझ जायगा कि यह घनिष्टता बढ़ते-बढ़ते विवाह अथवा विशिष्ट प्रेमकी ओर ले जायगी और यदि वह पतनकी ओर बढ़ना नहीं चाहता तो तत्काल अपनेको इस ढलुआ रास्ते हर बढ़नेसे रोक लेगा।

सतति-निरोध

संतति-निरोध विषयक पुस्तिका मैंने देख ली है।

इस पर मैं क्या लिखूं और कहूँ। यदि कोई कहे कि शवसे संभोग करना आनंददायक और हानिकारक होता है उसकी दलीलोंका क्या खंडन किया जाय ? ऐसे आदमीको समझाना और उसको गलती दिखाना असंभव है, जो यह अनुभव नहीं करता कि विषय-भोग, स्त्री और पुरुष दोनोंके लिए पातक और घृणित होता है। अरे, पशुओंमें हाथी[1] तक यह अनुभव करते हैं। विषय-भोग तभी क्षम्य होता है जब उसका उद्देश्य संतानोत्पत्ति हो। इसीकेलिए यह घृणित और पातकी प्रवृत्ति मनुष्यकी प्रकृतिमें उपजाई गई है।

१—कहा जाता है कि हाथी बहुत कम मैथुन करता है। हाथियोंको बंदी बनानेपर उनका जोड़ा लगाना बहुत कठिन होजाता है, क्योंकि वे दूसरोंके सामने मैथुन करनेमें बड़ा संकोच करते हैं।

मैं माल्थूजियन सिद्धांत[१] पर विचार नहीं करूंगा, क्योंकि वह एक धोखा-धड़ी है, वह एक नैतिक-प्रश्नपर यथार्थवादी दृष्टिकोण (सो भी गलत दृष्टिकोण) से विचार करता है। न मैं यह उल्लेख करूंगा कि हत्या-कृत्रिम गर्भपात तथा संतति निरोध में कोई अंतर नहीं है।

मुझे क्षमा करना—इस विषयको गंभीरतासे लेते हुए लज्जा और घृणा होती है। हमें तो इसकी निंदा नहीं करनी चाहिए कि समाज कहां तक पातककी ओर चला गया है, मनुष्यकी नीतिशी-लता किस हद तक मूर्छित होगई है, कि वह इन कृत्रिम उपायों का अवलंबन करता है। इस विषयपर वाद-विवादमें पड़नेका समय अब नहीं, हमें तत्काल इन बुराइयोंको दूर करनेमें जुट जाना चाहिए। एक अपढ़, शराबखोररूसी किसान भी, जो अनेक अंध-विश्वासोंका शिकार रहता है, इन उपायोंसे घृणा करेगा। वह विषयभोगको हमेशा एक पाप मानता है। जो लोग इस प्रकार के जंगलीपनका समर्थन करनेके लिए सिद्धांतोंको घसीटते हैं, उनसे तो वह अपढ़ रूसी किसान बहुत ऊंचा है।

ऐसा पाप जिसकी तुलना नहीं

ऐसा कोई अपराध नहीं, जिसे मनुष्य इतना अधिक छिपानेकी कोशिश करता हो, जितना कि वह अपनी विषय लोलुपता संबंधी अपराधको छिपानेकी कोशिश करता है। ऐसा कोई अपराध नहीं, जो इतना व्यापक और भयानक हो, सभी मनुष्य जिसके दोषी हों। ऐसा कोई अपराध नहीं, जिसके संबंधमें मनुष्योंके इतने परस्पर विरोधी विचार हों, कुछ तो उसे घृणित पाप समझें

१—मालथस १८वीं शताब्दीके प्रसिद्ध अंग्रेज़ अर्थशास्त्री थे, जिन्होंने यह सिद्धांत प्रतिपादित किया कि जनसंख्याकी वृद्धि भोजन तथा वस्त्रकी सुविधाओंपर निर्भर करती है। और इन सुविधाओंको छीन लेने अथवा महामारी, युद्ध, प्लेग आदिसे जनसंख्याकी वृद्धि रुकती है।

और कुछ साधारण सुख-भोग समझें। ऐसा कोई पाप नहीं जिसके संबंधमें इतनी मक्कारी प्रकट की गई हो। ऐसा कोई अपराध नहीं, जिससे संबंध लगाकर आसानीसे पता लगाया जा सके कि मनुष्य कितना नीतिवान है। ऐसा कोई पाप नहीं, जो व्यक्ति और समाजकी प्रगतिके लिए इतना अधिक विनाशकारी हो।

जाकी जैसी भावना

जो सत्यकी शोधमें है, उसके लिए वे विचार बिलकुल सरल और स्पष्ट हैं। जो सत्यकी शोधके लिए नहीं, बल्कि अपने पाप और अनीतिपूर्ण जीवनको उचित ठहरानेकी गरजसे दलील करना चाहता है, उसे वे बिचार विचित्र, अद्भुत तथा अनुचित तक प्रतीत होंगे।

अगाध विषय

इस पुस्तकका अंत नहीं हो सकता। अब भी मैं बराबर इस समस्या पर विचार किया करता हूँ, मैं बराबर अनुभव किया करता हूं कि अभी बहुत-सी बातें स्पष्ट करनी हैं। बहुतसी बातें जोड़नी हैं। यह विषय इतना विशाल, महत्त्वपूर्ण तथा नया है और इसके मुकाबिलेमें मेरी शक्ति सच, इतनी कम तथा अयथेष्ट है कि ऐसा सर्वथा स्वाभाविक है।

इसलिए मेरे विचारमें जिन लोगोंको इस विषयमें दिलचस्पीहो, उन्हें लिखना चाहिए। उन्हें अपनी शक्तिके अनुसार इस विषयकी शोध करनी चाहिए तथा इसका स्पष्टीकरण करना चाहिए। यदि सब लोग इस विषयपर अपने हृदयके सच्चे उद्गार और विचार लिखें तो बहुत-सी अस्पष्ट बातें स्पष्ट हो जायंगी, बहुत-सी छिपी हुई बातें प्रकाशमें आ जायँगी, बहुत सी विचित्र लगनेवाली बातें अपनी विचित्रता खो बैठेंगी, और अनीतिपर्ण ढंगसे रहनेके कारण जो बहुत-सी बातें सही लगती हैं, वे गलत लगने लगेंगी।

मुझे कई सुविधायें थीं, जिससे मैं समाजका ध्यान इस विषयकी ओर आकृष्ट कर सका। अब अन्य लोगोंको इस विषयपर विविध पहलुओंसे विचार करना चाहिए।

४

कुछ और विचार[1]

प्रेम

प्रेम दो प्रकारका होता है—शारीरिक और आध्यात्मिक। शारीरिक प्रेम संवेदना, काल्पनिक-सुखसे उत्पन्न होता है। इसके विपरीत आध्यात्मिक प्रेम अपने भीतरकी पापवृत्तियोंसे युद्ध करनेसे, हमें घृणा नहीं प्रेम करना चाहिए, इस आत्म-बोधसे उत्पन्न होता है। वह सदा शत्रुओंकी तरफ दौड़ता है। यह प्रेम अत्यंत मूल्यवान् और सर्वश्रेष्ठ वस्तु है।

स्वाभाविक अवस्था

सभी लोग, विशेष रीतिसे नवयुवक, ऊंचे आध्यात्मिक क्षेत्रसे फिसल कर तुच्छ वैषयिक क्षेत्रमें गिर पड़ते हैं। हमें जानना चाहिए कि मनुष्यकी कौनसी अवस्था स्वाभाविक है, कौनसी अस्वाभाविक है।

विवाहकी शर्तें

वंशरक्षाके लिए विवाह एक शुभ और आवश्यक वस्तु है। पर इसके लिए आवश्यक है कि माता-पिताओंमें अपने बालकोंको शिक्षा देकर परान्नजीवी नहीं, बल्कि ईश्वर तथा मनुष्य-जातिके सच्चे सेवक बनाने की शक्ति हो। इसके लिए उन्हें दूसरोंके श्रम

१–सन् १९०० से लेकर सन् १९०८ के बीच लिखी गई डायरियों तथा पत्रोंसे संकलित।

पर नहीं, बल्कि अपने श्रम पर रहना सीखना चाहिए। वे समाजसे जितना लें, उससे अधिक देनेकी क्षमता रखें। हम लोग बुर्जुआ लोगोंके इस नियम पर चलते हैं कि शादी तभी करनी चाहिए, जब तुम दूसरेकी गर्दन पर अच्छी तरह सवार हो जाओ अर्थात् साधन-संपन्न हो जाओ। इसके विपरीत नियम पर चलना चाहिए। शादी उन्हीं लोगोंको करनी चाहिए, जो बिना किसी साधनके गुजारा कर सकें तथा बच्चोंको पाल सकें। ऐसे ही माता-पिता बच्चोंका लालन-पालन उचित रीतिसे कर सकते हैं।

एक पत्नी-व्रत

तुम पूछते हो—प्रत्येक पतिको केवल एक ही स्त्री रखनी चाहिए तथा प्रत्येक स्त्रीको केवल एक ही पति, यह नियम किस सिद्धांत पर बना है और क्यों इस नियमको भंग करना बुरा है?

यदि इस नियमको कि प्रत्येक पतिको केवल एक ही स्त्री रखनी चाहिए तथा प्रत्येक स्त्रीको केवल एक ही पति, एक धार्मिक नियम, अर्थात् आधार-भूत नियम, अनुल्लंघनीय नियम माना जाय, तो तुम्हारी शंका ठीक है। परंतु यह एक आधारभूत धार्मिक नियम नहीं है, बल्कि इस आधारभूत धार्मिक नियमसे निकाला गया नियम है—अपने पड़ौसीको प्यार करो, उसके साथ ठीक वैसा ही व्यवहार करो जैसा कि तुम चाहते हो वह तुम्हारे साथ करे। यह वैसे ही निकाला गया है, जैसे 'जो काम नहीं करेगा, उसे खाना नहीं मिलेगा', इस नियमसे यह निकाला गया है कि चोरी मत कर, खाली मत बैठ, काम कर। यह सब नियम पुराने ऋषियोंने आधारभूत नियमोंके आधारपर जीवनमें व्यवहारके लिए बनाये हैं। भौतिक संबंधोंको देखते हुए यह नियम बनाया गया है कि चोरी मत कर; जीविका प्राप्त करनेके उपायोंके संबंधमें यह नियम बनाया गया है कि अपने लिए स्वयं

परिश्रम कर, दूसरेके परिश्रमपर मत रह; मनुष्योंके पारस्परिक संबंधोंके लिए यह नियम बनाया गया है कि बदला मत ले, अपराधीपर वार मत कर, बल्कि सहनकर, उसे क्षमा कर; इसी प्रकार स्त्री-पुरुष संबंधोंके लिए यह नियम बनाया गया है कि पति एक पत्नीव्रत रखे तथा स्त्री एक पतिव्रत रखे।

ऋषियोंका कहना है कि मनुष्य यदि इन नियमोंका पालन करेगा तो उसका कल्याण होगा, सांसारिक प्रथाओंपर चलनेकी बनिस्बत इन नियमोंपर चलनेसे उसका अधिक कल्याण होगा। यदि एकाध उदाहरणोंमें इन नियमोंका पालन न करनेसे कोई बुराई न हुई हो, तो भी इन नियमोंका पालन करना उत्तम होगा, क्योंकि इन नियमोंको भंग करनेपर मनुष्य-जातिको अनेक विपत्तियोंका सामना करना पड़ा है। दूसरे, इस एक पत्नीव्रत अथवा एक पतिव्रतका पालन करनेसे मनुष्य ब्रह्मचर्यके आदर्शके अधिक निकट पहुंचता है।

मैं चाहता हूं कि तुम एक युवक होनेके नाते इस आदर्शके अधिक-से-अधिक निकट पहुंचो और अपनी अंतःशुद्धिका यथासंभव प्रयत्न करो, इसीमें कल्याण है।

किसी स्त्रीसे संबन्धहो जानेपर

मेरे विचारमें किसी स्त्रीसे संबंध हो जानेपर, और विशेष रीतिसे उसके गर्भ रह जाने पर या उससे बच्चा हो जाने पर, पुरुषको उस स्त्रीको कभी न छोड़ना चाहिए।

एक शरीर

पति और पत्नी दो नहीं एक शरीर हैं, बाइबिलके ये शब्द बड़े महत्वपूर्ण हैं। ईश्वर सेवा अथवा आत्म-कल्याणके लिए भले ही तुम विवाहग्रंथि तोड़ दो, अलग-अलग हो जाओ अथवा परिवारमें दुर्भाव उत्पन्न करने वाला कोई कार्य करलो, पर अन्यथा ये कार्य वर्जित हैं।

विवाहित जीवनका उद्देश्य

मेरे विचारमें पतिका अपनी स्त्रीको, जिससे बच्चा हो चुका हो, छोड़ देना बहुत बुरा काम है। इसका परिणाम परित्यक्ता स्त्रीके लिए उतना नहीं, जितना पतिके लिए भयंकर होता है। मेरा ख्याल है कि तुम भी इस सामान्य गलतीमें फंस गए हो कि विवाहित जीवनका उद्देश्य सुखोपभोग है। नहीं, ऐसा नहीं है। विवाहित जीवनमें तो सुख घटते हैं, क्योंकि मनुष्य पर नये कठोर कर्तव्यका बोझ आ पड़ता है। विवाहित जीवनका उद्देश्य, जिसकी ओर मनुष्य इतने प्रबल रूपसे आकर्षित होते हैं, सुख-वृद्धि नहीं, बल्कि एक मुख्य कर्तव्यकी पूर्ति—वंशरक्षा है।

जायज विवाह

......तुम्हारे पुत्रके विवाहके विषयमें मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूं कि विवाह तभी जायज और गौरवपूर्ण होता है जब पति-पत्नी आपसमें प्रतिज्ञा कर लेते हैं कि वे एक-दूसरेके प्रति वफादार रहेंगे, फिर वह चाहे मंत्रभूत न हो, तो भी कोई परवाह नहीं, इसलिए अपने निर्णयके अनुसार कार्य करो।

प्रेम, हानिकर चीज

......मैं समझता हूं कि तुम्हारे मनमें भी यह हानिकारक अंधविश्वास घुस गया है कि प्रेम-बद्ध होनेके मानी सचमुच प्रेम करना है और यह एक अच्छी चीज है। नहीं, यह एक बड़ी हानिकर चीज है और इसका परिणाम बड़ा दुःखदायी होता है। यदि मनुष्य धर्म अथवा नीतिसे कोरा हो तो वह ऐसे कामममें फंस सकता है, पर प्रेमको जीवन-धर्म मान लेनेपर ऐसे काममें पड़ना बुरा है। प्रेम तभीतक सच्चा रहता है जब वह निःस्वार्थ होता है। ऐसा प्रेम अपनी स्त्रीसे प्राप्त होता है और वह आनन्द-दायी होता है। पर यदि तुम किसी दूसरेके प्रेममें पड़ जाओगे तो तुम्हारा पतन होगा और तुम्हें दुःख मिलेगा।

अपनेको धोखा

तुम समझते हो कि तुम्हारा उद्देश्य उसको बचाना है, पर तुम अपनेको धोखा दे रहे हो। यदि तुम्हारे अंदर यह भावना होती, यदि तुम विशेष रीतिसे उसकी नहीं, बल्कि एक मानव प्राणीकी रक्षा करनेकी भावना रखते तो तुम ऐसा पहिले भी करते। तुम्हारे अंदर उसके प्रति काम उत्पन्न हो गया। इसलिए, तुम यदि मेरी सलाह चाहते हो, तो मैं कहूंगा कि तुम उससे संबंध-विच्छेद कर लो तथा अपनी सारी शक्ति एक व्यक्तिके प्रति नहीं, बल्कि समस्त मानव-जातिके प्रति प्रेम उत्पन्न करनेमें लगाओ। यही प्रत्येक मनुष्यका मुख्य जीवन-कार्य है।

विवेक मत त्यागो

मनुष्यके नाना दुःखोंकी जड़ विषय संबंध हैं। इससे अनेक बुराइयां उत्पन्न होती हैं। इसीलिए अनादिकालसे मनुष्य यथासंभव इन संबंधोंको अहानिकर बनानेकी चेष्टा करता आया है। उसने इसके लिए अनेक नियम बनाये हैं, जिनको भंग करने पर बड़े दुख भोगने पड़ते हैं। इस जटिल, महत्वपूर्ण तथा कठिन विषयमें विवेकका त्याग कर भावनाओंसे परिचालित होना अपनेको पशु बना देना है। लोग कहते हैं—'प्रेम' उच्च नैतिक भावना है। पर दुखकी बात तो यह है कि लोग अपनी वासनाको ही उच्च नैतिक भावना मान लेते हैं। यदि वासनाको प्रेमसे अलग करनेकी कोई सच्ची कसौटी होती तो अपनी भावनाओंसे परिचालित होनेमें कोई बुराई न होती। पर ऐसी कोई सच्ची कसौटी नहीं है, अतः यदि तुम अपनी भावनाको ही अपनी पथप्रदर्शिका बनाओगे तो लोग अपनी पशुत्वपूर्ण भावनाको उच्च नैतिक भावना मानकर पशु बन जायंगे और अपनेको तथा अपनी संतानोंको पापके महासागरमें डुबो देंगे।

हमारे तथाकथित कलाकार

मैथुनसे अधिक घृणित कार्य और क्या हो सकता है ? यदि किसीके मनमें इस कार्यके प्रति तीव्र घृणा उत्पन्न करनी हो तो उसके सामने इस कुकृत्यका सविस्तार वर्णन कर देखो। इसलिए जो कौमें पशु-जीवनसे निकल कर आध्यात्मिक जीवनकी ओर बढ़ रही हैं, वे मैथुन तथा गुप्तेन्द्रियोंका नाम लेनेमें लज्जित होती हैं। यदि तुम पूछो, ऐसा क्यों है, तो उत्तर स्पष्ट है। यह लज्जा इसलिए उत्पन्न होती है कि मनुष्य विवेकशील प्राणी होनेके नाते इस घृणित कार्यसे बचे और इसे तभी करे जब वह अपनेसे संघर्ष न कर सके, अपनेको रोक न सके। जब तक आवश्यकता है, तब तक मनुष्य-जातिको कायम रखनेके लिए, मनुष्यमें यह पाशविक-वृत्ति पैदा की गई है। इस कार्यकी तथा इस कार्यमें सहायक अंगोंकी प्रशंसा करना मानव-स्वभाव-को कितने विकलित रूपमें दिखाना है, पर हमारे तथाकथित चित्रकार और कलाकार यही तो करते हैं।

विकारोत्तेजक वस्तुएं

पंचेन्द्रियोंको लुभानेवाली सभी वस्तुएं, जैसे घरकी सजावट, भड़कीले कपड़े, संगीत, सुगंधि, स्वादिष्ट भोजन; चिकनी चीजें, ये सभी चीजें विकार बढ़ाती हैं। पर प्राकृतिक वस्तुएं, प्रकाश, सूर्यकी छटा, पेड़-पौधे, हरी घास, आकाश, अलंकाररहित मनुष्य शरीर, पक्षियोंका गान, पुष्पोंकी सुगंधि, फल, ये प्राकृतिक वस्तुएं विकार नहीं बढ़ातीं। बिजलीकी रोशनी, सजावटके सामान, संगीत, सुगंधि, स्वादिष्ट भोजन; चिकनी चीजें, ये सब विकार बढ़ाने वाली होती हैं।

सरल और स्पष्ट नियम

मनुष्यको बुद्धि और भाषा इसलिए नहीं दी गई है कि वह अपने पाशविक विकारोंका औचित्य सिद्ध करनेकी युक्तियां ढूंढ़े।

उसे बुद्धि और भाषा इसलिए दीगई है कि वह अपने विकारोंसे संघर्ष करे, अपनी विवेक बुद्धिकी वृद्धि करे और उसीके आदेशानुसार चले। बुद्धिका तकाजा है कि मनुष्य अपनी विषयेच्छा पर संयम रखे, अन्यथा वह बड़ी दुखदायी सिद्ध होती है। इस विषयमें सबसे सरल और स्पष्ट नियम यह है कि यदि स्त्री और पुरुषका एक बार शरीर संबंध होजाय तो वे अपनेको आजीवन बंधनमें बंधा हुआ समझें और अन्य किसीसे संबंध न रखें। इसीको विवाह कहते हैं। इस बंधनमें बंधने वालोंकी भलाईके लिए और बच्चोंका लालन-पालन करनेके लिए इस नियमका पालन आवश्यक है।

सतत् प्रयत्न करो

मनुष्य-जीवनका कर्तव्य विकारोंसे मुक्ति पानेकी सतत् चेष्टा करना है। यह चेष्टा हर अवस्थामें संभव है और शरीरपरकी विजय सदा प्राप्तकी जा सकती है। केवल उसीको विजय नहीं प्राप्त होती, जो इस बातमें विश्वास नहीं करता। और इस बातमें विश्वास करनेके लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य इस दिशामें प्रयत्न करे।

विवेकशील मनुष्यका कर्तव्य

जो पतनसे बचा हुआ है, उसे चाहिए कि वह इसी तरह बचे रहनेके लिए अपनी सारी शक्तियोंका उपयोग करे, क्योंकि गिर जाने पर उठना हजार गुना कठिन होता है। विवाहित और अविवाहित, सभीको विकारोंसे संघर्ष करना चाहिए, अर्थात् संयम पालनका प्रयत्न करना चाहिए। तुम्हें शंका होती है कि क्या यह संघर्ष आवश्यक है? मैं इसका कारण समझता हूँ। तुम्हें इसलिए शंका होती है कि तुम ऐसे लोगोंसे घिरे हुए हो, जो यह कहते हैं कि यह संघर्ष आवश्यक और प्रकृति विरुद्ध है।

यह समझनेके लिए दिमागपर काफ़ी जोर देना पड़ता है कि

एक विवेकशील प्राणी—मनुष्य—केलिए विकारोंसे संघर्ष करना उसकी प्रकृतिके विरुद्ध नहीं, उसके लिए प्राथमिक कर्त्तव्य है, क्योंकि मनुष्य इसलिए पशुसे ऊंचा माना जाता है कि ईश्वरने उसे बुद्धि दी है। पशु बहुत अधिक बच्चे पैदा करते हैं पर उनकी संख्या आपसी कलह (एक पशु दूसरे पशुको खा जाता है) तथा बाहरी अवस्थाओं (जिनपर उनका अधिकार नहीं होता) के कारण बढ़ने नहीं पाती। मनुष्य विवेकशील प्राणी है, इसलिए वह एक तो कलहके स्थान पर संयम पालन कर सकता है, दूसरे, वह आध्यात्मिक जीवनके लिए हानिकर बाहरी अवस्थाओंका प्रतिकार कर सकता है। यह सच है कि मनुष्य अभी अपने विवेकसे यह काम नहीं लेता, और अपने ही समान दूसरे प्राणियों का नाश करता रहता है; कितने आबाल-वृद्ध शीत, रोग तथा अधिक परिश्रमसे मर जाते हैं। फिर भी यह स्पष्ट है कि एक दिन वह समय आयगा, जब विवेकशील मनुष्य एक-दूसरेका नाश करना त्याग देंगे और अपनी जीवन-व्यवस्था इस प्रकारकी करेंगे कि उनकी संख्या आजकलकी भांति इतनी तेजीसे (आजकल मनुष्य-संख्या जिस रीतिसे बढ़ रही है उस रीतिसे बढ़ती रहने पर वह ५० सालमें दूनी होजायगी) न बढ़ने पायगी कि कुछ सौ सालके भीतर मनुष्य-जाति पृथ्वी पर समा ही न सके। क्या वे गरीब आदमियोंकी हत्या कर डालेंगे; अथवा एक-दूसरेका वध करने पर तुल जायंगे? नहीं, यह सब असंभव भी है और अनावश्यक भी। अनावश्यक इसलिए है कि 'प्रकृति ने मनुष्यमें वैषयिकता पाशविक वृत्तिके साथ पवित्रता, संयम पालनकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति भी उत्पन्नकी है। यह प्रवृत्ति प्रत्येक निर्दोष युवक-युवतीमें वर्त्तमान रहती है। यह कल्याणकारी नैतिक प्रवृत्ति है। प्रत्येक मनुष्यको इस प्रवृत्तिकी संरक्षा तथा संवृद्धि करनी चाहिए, चाहे उसका पतन होगया हो, और चाहे न हुआ हो। नीतिशील व्यक्तियोंके लिए

पतनका अर्थ विवाह कर लेना अर्थात् एक पत्नीव्रतमें अपनेको बांध लेना है, पर उन्हें विवाह कर लेनेके बाद भी ब्रह्मचर्य पालनका यत्न करते रहना चाहिए।

तुम्हारा पत्र पढ़नेपर मेरे मनमें जो विचार उठे, मैंने लिपिबद्ध कर लिए हैं। शील तथा सत्यपूर्ण जीवन व्यतीत करनेकी चेष्टा करनेवाले तुम जैसे युवकको मुझ बूढ़ेकी यही हार्दिक सलाह है कि अपनी सारी शक्तिसे अपनी पवित्रताकी रक्षा करो, प्रलोभनों से संघर्ष करो और कभी निराश मत हो, अपने प्रयत्नोंमें शिथिलता मत आने दो। तुम पूछोगे, संघर्ष कैसे किया जाय ? मुझे क्या करना चाहिए ? क्या न करना चाहिए ? निस्संदेह तुम व्यावहारिक उपदेश जानते होगे। अगर न जानते हो तो नीति-विषयक कोई पुस्तक पढ़लो। शराब मत पीओ, मांस मत खाओ, धूम्रपान मत करो, अगंभीर प्रकृतिके साथियों, विशेष रीतिसे स्त्रियोंकी संगत मत करो। यह सब तुम जानते होगे और न जानते हो तो गांठमें बांधलो। मेरी यही सलाह है, और इसे मैं अति महत्त्वपूर्ण मानता हूँ कि जीवनका अर्थ समझो, जीवनका उद्देश्य विषय-सेवन नहीं, बल्कि ईश्वर सेवा है, अपना जीवन विलासपूर्ण नहीं, बल्कि अधिकाधिक आध्यात्मिक बनाओ।

ब्रह्मचर्यका आदर्श

प्रत्येक अवस्थाके मनुष्यको ब्रह्मचर्यके आदर्शकी ओर बढ़नेका सतत प्रयत्न करना चाहिए। तुम इस आदर्शके जितने अधिक निकट पहुंचोगे, उतना ही अधिक अपना कल्याण करोगे और परमात्माके प्यारे बनोगे। मनुष्य विलासी बनकर नहीं; बल्कि ब्रह्मचर्य-पालन करके ईश्वरकी अधिक-से-अधिक सेवा करता है।

टाल्सटाय की अन्य पुस्तकें

१. मेरी मुक्ति की कहानी
२. प्रेममें भगवान
३. क्या करें ?
४. बच्चों का विवेक

मिश्रित

मूल्य
बारह आना